हज
और उसका तरीक़ा

सैयद हामिद अली (रह०)

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो बहुत मेहरबान और रहम करनेवाला है"

भूमिका

हज जैसी अज़ीमुश्शान इबादत भी आज बेअसर हो चुकी है, न हाजियों की ज़िन्दगी में इससे कोई अच्छा इंक़िलाब आता है और न ही मुस्लिम उम्मत के बेरूह जिस्म में ज़िन्दगी की लहर दौड़ती है। इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि हज करनेवाले आमतौर पर हज की हक़ीक़त व रूह और उसके मक़सद से अनजान होते हैं। वे हज को बेरूह रस्मों की तरह अदा करके मुत्मइन हो जाते हैं कि वे अपनी ज़िम्मेदारी से आज़ाद और अल्लाह के यहाँ बड़े अज्र के हक़दार हो गए और ऐसी बेरूह रस्मों का असर सबको मालूम है।

इल्म रखनेवालों की ज़िम्मेदारी थी कि आम मुसलमानों को इस बेख़बरी के दलदल से निकालते, लेकिन उनकी तरफ़ से हज पर लिखी गई किताबों में और सबकुछ है, पर हज की हक़ीक़त और उसकी रूह के बारे में कोई बात ही नहीं है। एक-दो लेखकों ने अगर इस तरफ़ ध्यान दिया भी है तो हज के किसी एक रुख़ और उसके एक-दो पहलुओं को सामने रखकर; ज़ाहिर है, जिस इबादत के बहुत-से मक़सद हों और उनमें से कोई मक़सद भी कम अहम न हो तो उसके किसी एक मक़सद को बयान कर देना न काफ़ी हो सकता है न ही हक़ीक़ी फ़ायदा देनेवाला।

यह किताब हज करनेवालों के लिए लिखी गई। इसमें इस बात की पूरी कोशिश की गई है कि हज के सभी मक़सद और उसकी हक़ीक़त व रूह के तमाम पहलू, जो क़ुरआन और सुन्नत से साबित हैं, पढ़नेवालों के सामने आ जाएँ, साथ ही उन अमली तदबीरों की भी निशानदेही कर दी गई है जिनको अपनाकर उन मक़सदों को हासिल किया जा सकता है और ये सबकुछ ऐसे ढंग से लिखा गया है कि हज की हक़ीक़त और रूह खुलकर सामने आने के

साथ दीन के बुनियादी तक़ाज़े भी पूरी तरह उभरकर सामने आ जाते हैं। इस तरह यह किताब दीन की बुनियादी दावत पेश करने के मक़सद को भी बड़ी हद तक पूरा करती है।

इस किताब में इस बात का पूरी तरह एहतिमाम किया गया है कि जो कुछ लिखा जाए क़ुरआन मजीद की तालीमात और सही व भरोसेमन्द हदीसों ही की रौशनी में लिखा जाए और ज़ईफ़ (कमज़ोर) व बेअस्ल रिवायतों से पूरी तरह बचा जाए।

किताब के आख़िर में हज करने का तरीक़ा भी मुख़्तसर मगर वाज़ेह तौर पर बयान किया गया है। इसके बाद मदीना की हाज़िरी का बयान है।

आशा है कि यह किताब आम मुसलमानों के लिए आमतौर से और हज का इरादा करनेवालों के लिए ख़ासतौर से फ़ायदेमन्द साबित होगी।

अपनी दुआओं में लेखक को ज़रूर याद रखें।

हामिद अली
रमज़ानुल-मुबारक 1408 हिजरी
अप्रैल-1988 ई०

मुबारक काम

आपको हज का मुबारक मौक़ा मिल रहा है, यह अल्लाह का बहुत बड़ा करम है। इस फ़ज़्लो-करम पर आप अल्लाह का जितना भी शुक्र अदा करें, कम है। आख़िर इस दुनिया में बहुत-से ऐसे मुसलमान भी तो हैं जिनपर अल्लाह के हुक्म—

> "लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो इस घर (काबा) तक पहुँचने की ताक़त रखता हो वह इस (काबा) का हज करे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-97)

के मुताबिक़ हज फ़र्ज़ हो चुका है मगर उन्हें इसकी अदाएगी की तौफ़ीक़ नहीं होती और कितने ही अल्लाह के बन्दे ऐसे हैं जो उम्र-भर तमन्ना करते रहते हैं कि वे उस पाक ज़मीन में किसी तरह पहुँच जाएँ मगर उनकी यह तमन्ना पूरी नहीं होती।

आप कितने ख़ुशनसीब हैं कि अपने मालिक और नेमतों से नवाज़नेवाले ख़ुदा की पुकार पर 'लब्बैक' (हाज़िर हूँ) कहने और उसके दरबार में हाज़िरी का मुबारक मौक़ा हासिल कर रहे हैं। ख़ुदा आपके मुबारक इरादों को पूरा करे और 'हज्जे-मबरूर' यानी वह हज जो अल्लाह के दरबार में क़बूल हो जाए, अदा करने की तौफ़ीक़ दे।

हज की अहमियत

यह फ़र्ज़ जिसे आप अदा करने जा रहे हैं, इस्लाम के उन पाँच अरकान में से एक है जिनपर इस्लाम की पूरी इमारत क़ायम है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "इस्लाम की बुनियाद पाँच चीज़ों पर है, (1) इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं है, और मुहम्मद (सल्ल॰) उसके बन्दे और उसके रसूल हैं, (2) नमाज़ क़ायम करना, (3) ज़कात देना, (4) हज करना, (5) रमज़ान के रोज़े रखना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यानी ईमान के बाद सबसे अहम और बुनियादी यही पाँच आमाल हैं। तमाम नेक काम इन्हीं से निकलते, परवान चढ़ते और बरक़रार रहते हैं। जिस आदमी को अपनी ज़िन्दगी इस्लामी साँचे में ढालनी और अपने ख़ालिक़-मालिक की फ़रमाँबरदारी करनी हो, उसके लिए ज़रूरी है कि वह इन इबादतों को बुनियादी अहमियत दे और उन्हें सही तरीक़े से अदा करने की पूरी-पूरी कोशिश करे। यह एक ऐसी हक़ीक़त है कि जो क़ुरआन और रसूल (सल्ल॰) की हदीसों से बिलकुल वाज़ेह है। इन इबादतों की बुनियादी अहमियत को सामने रखकर ही एक मौक़े पर, जबकि एक व्यक्ति ईमान और इस्लाम की हक़ीक़त के बारे में सवाल कर रहा था, अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इन्हें ही इस्लाम ठहराया (पूछा गयाः) "ऐ मुहम्मद! मुझे बताओ कि इस्लाम क्या है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "इस्लाम यह है कि तुम गवाही दो कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल है। नमाज़ क़ायम करो, ज़कात दो, रमज़ान के रोज़े रखो और अल्लाह के घर का हज करो अगर तुम्हें वहाँ जाने की ताक़त हो।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

इन बातों को ही इस्लाम इसलिए बताया गया है कि इन अरकान की अदाएगी के बिना इस्लाम पर अमल करना नामुमकिन है और उनकी ठीक-ठीक अदाएगी के बाद यह भी नामुमकिन है कि इनसान जान-बूझकर अल्लाह और रसूल से सरकशी की राह अपना सके। मानो इन अरकान की सही अदाएगी पूरे दीन की पैरवी जैसी है और इनमें ग़फ़लत और कोताही करना पूरे दीन के बारे में ग़फ़लत और कोताही करने के समान है।

हज की फ़ज़ीलत

जिस फ़र्ज़ की अदाएगी का आपने इरादा किया है उसकी फ़ज़ीलत और अहमियत का कुछ अन्दाज़ा आपको इस हदीस से हो सकता है—

> अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा गया, कौन-सा अमल अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान।" सवाल किया गया, फिर कौन-सा अमल बेहतर है? फ़रमाया, "अल्लाह के रास्ते में जिहाद करना।" पूछा गया, फिर कौन-सा अमल अच्छा है? फ़रमाया, "हज्जे-मबरूर।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई)

'हज्जे-मबरूर' उस हज को कहते हैं जिस हज की अदाएगी उसकी हक़ीक़त, उसकी रूह और उसकी ज़ाहिरी व बातिनी ख़ूबियों को पूरी तरह ध्यान में रखकर इस तरह की गई हो जिस तरह उसे अदा करने का हक़ है।

एक और हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिसने सिर्फ़ अल्लाह के लिए हज किया, और (उस हज में) उसने न कोई शहवानी (कामवासना-सम्बन्धी) बात की और न कोई गुनाह का काम किया तो वह (गुनाहों से) ऐसा पाक हो गया जैसा कि वह उस दिन था, जबकि वह अपनी माँ के पेट से पैदा हुआ था।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, नसई, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी)

हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) से नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "ऐ अम्र! क्या तुम नहीं जानते कि इस्लाम अपने से पहले के गुनाहों को ढा देता है, हिजरत अपने से पहले के गुनाहों को

मिटा देती है और हज अपने से पहले के गुनाहों को ढा देता है।"
(हदीस : मुस्लिम)

रसूल (सल्ल॰) की बीवी हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम सब आमाल (कर्मों) में जिहाद को अफ़ज़ल समझते हैं, तो क्या हम (औरतें) जिहाद न करें?" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया—

"नहीं! तुम औरतों के लिए बेहतरीन जिहाद 'हज्जे-मबरूर' है।"
(हदीस : बुख़ारी)

एक और मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हज्जे-मबरूर का बदला जन्नत ही है।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा, मालिक)

हज के सबसे अहम दिन 'अरफ़ा' की फ़ज़ीलत बयान करते हुए अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह तआला 'अरफ़ा' के दिन से ज़्यादा किसी भी दिन अपने बन्दों को जहन्नम से रिहा नहीं करता। वह (उस दिन अपने बन्दों से बहुत) क़रीब होता है। फिर वह फ़रिश्तों से उनका ज़िक्र फ़ख़्र (गर्व) के साथ करता है और फ़रमाता है कि (देखो तो) ये (बन्दे) क्या चाहते हैं!"
(हदीस : मुस्लिम, नसई, इब्ने-माजा)

हज की तैयारी

जिस फ़र्ज़ की अहमियत, फ़ायदे और फ़ज़ीलत का यह हाल हो उसकी ठीक-ठीक अदाएगी का जितना भी एहतिमाम किया जाए कम है। ख़ास तौर से, जबकि यह फ़र्ज़ बहुत-सी तकलीफ़ें और परेशानियाँ झेले बिना अदा नहीं हो सकता। कितना बदनसीब होगा वह इनसान जो इतनी परेशानियाँ उठाए और तकलीफ़ें झेले, लेकिन ख़ुद अपनी कोताहियों और ग़लतियों से अपने हज को बरबाद कर दे और अल्लाह तआला के दरबार से इस तरह वापस लौटे कि ईमान और अमल की जो कुछ पूँजी उसके पास थी उसे भी अपनी बेवक़ूफ़ी से गवाँ आया हो! कितना दर्दनाक है यह अंजाम! काश! आप

इससे बचने की फ़िक्र करें!

अगर आप चाहते हैं कि आपका हज अल्लाह के दरबार में क़बूल हो, और आपका ख़ुदा आपसे राज़ी हो तो इसका सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है और वह यह कि आप हज की ठीक-ठीक अदाएगी इस तरह करने की कोशिश करें कि उसका हक़ अदा हो जाए और हज के सफ़र की तैयारियों से कहीं ज़्यादा लगन के साथ इस बात की तैयारी करें कि आपका हज अच्छे-से-अच्छे तरीक़े से अदा हो।

हज की तैयारी के बारे में सबसे अहम बात यह है कि आपको हज की हक़ीक़त की पूरी जानकारी हो। बेशक आपको हज के अरकान, तरीक़े, आदाब और हज की दूसरी तमाम ज़रूरी बातों की जानकारी ज़रूर होनी चाहिए, लेकिन इससे कहीं ज़्यादा ज़रूरी यह बात है कि आपको हज की रूह, उसकी हक़ीक़त और उसके मक़ासिद (उद्देश्यों) का इल्म हो।

अल्लाह ने अपने बन्दों पर जो इबादतें फ़र्ज़ की हैं उनमें से हर इबादत का एक जिस्म है और एक उसकी रूह। जैसे, नमाज़ का एक जिस्म (ज़ाहिरी पहलू) है और वह है क़ियाम (सीधा खड़ा होना), क़ुऊद (बैठना), रुकूअ (आधा झुकना) व सुजूद (सजदे)। नमाज़ की रूह है 'ख़ुशूअ' और बन्दे का अपने को पूरी तरह अल्लाह के हवाले कर देना और अपने को उसके आगे डाल देना। क़ुरआन में है—

> "यक़ीनन कामयाब हुए वे ईमानवाले जो अपनी नमाज़ों में (अल्लाह के आगे) दिल से झुके रहते हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयतें-1, 2)

या जैसे रोज़े का एक जिस्म है और वह है पौ फटने से लेकर सूरज डूबने तक खाने, पीने और मुबाशरत (सहवास) से बचना, और इसकी रूह 'तक़वा' है यानी अल्लाह से डरते हुए उसकी नाफ़रमानी से पूरी तरह बचना। क़ुरआन में है—

> "ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! तुमपर रोज़े फ़र्ज़ कर दिए गए, जिस तरह तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज किए गए थे। ताकि तुममें 'तक़वा' पैदा हो। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो आदमी (रोज़े में) झूठ बोलना और झूठ पर अमल करना न छोड़े, अल्लाह को ऐसे आदमी के खाना-पीना छोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं।"

(हदीस : बुख़ारी, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा)

ठीक यही मामला हज का भी है। हज के तमाम ज़ाहिरी आमाल और तौर-तरीक़े इसका जिस्म हैं और इसका मक़सद और मंशा इसकी रूह है। हज का मक़सद और मंशा क्या है? इसपर हम आगे तफ़सील से चर्चा करेंगे। इस वक़्त सिर्फ़ एक मिसाल से इस हक़ीक़त को समझिए। हज के सिलसिले का एक अहम काम क़ुरबानी करना है। जानवर को ज़बह करके उसका ख़ून बहाना और उसका गोश्त खाना-खिलाना यह क़ुरबानी का जिस्म है। इसकी रूह क्या है? इसे क़ुरआन मजीद के शब्दों से सुनिए—

"अल्लाह को इन (क़ुरबानियों) का ख़ून और गोश्त हरगिज़ नहीं पहुँचता है, परन्तु उसे तुम्हारा 'तक़वा' पहुँचता है।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-37)

इसी तरह हज के तमाम आमाल, अपने पीछे एक मक़सद, मंशा और एक रूह रखते हैं।

बेशक इन इबादतों की जो शक्ल ख़ुदा नें तय कर दी हैं, उन्हें अदा किए बिना न तो ये इबादतें अदा हो सकती हैं और न वह रूह ही पैदा हो सकती है जो इन इबादतों से मतलूब है। इसलिए इबादत की ये शक्लें अपने अन्दर बड़ी अहमियत रखती हैं। लेकिन इन शक्लों से ज़्यादा अहमियत उस मक़सद और उस रूह की है जिसके लिए ये शक्लें बनाई गई हैं और ये शक्लें उसी वक़्त कोई क़ाबिले-लिहाज़ अहमियत और फ़ायदा रखती हैं जब इनके अन्दर यह रूह और यह मक़सद मौजूद हो। मक़सद और रूह से ख़ाली इबादतें न सीरत और किरदार के बारे में कोई अहम रोल अदा करती हैं और न आख़िरत में ख़ुदा के दरबार में क़बूल होने का हक़ रखती हैं।

इस हक़ीक़त को सामने रखें तो इस बात का आपको अच्छी तरह अन्दाज़ा होगा कि हज के सिलसिले में आपको क्या करना है और कैसे करना है। यक़ीनन आपको हज के ज़ाहिरी आदाब और आमाल के बारे में भी कोई कोताही न बरतनी चाहिए, मगर इससे बहुत ज़्यादा ध्यान हज के मक़सद को पूरा करने और हज की रूह को हासिल करने पर होनी चाहिए। ज़ाहिरी तरीक़े और आदाब में अगर कोई कोताही रह जाए तो हज की रूह के पूरा किए जाने से उसकी कमी दूर हो सकती है, लेकिन हज की रूह की किसी भी कमी को दूर करना ज़ाहिरी तरीक़ों व आदाब से मुमकिन नहीं।

आइए अब हम देखें कि हज की हक़ीक़त और उसकी रूह क्या है?

हज की हक़ीक़त

हज के मानी अरबी ज़बान में ज़ियारत (दर्शन) का इरादा करने के हैं और हज को हज इसी लिए कहते हैं कि मुसलमान दुनिया-भर से खिंज-खिंचकर हर साल 'काबा' की ज़ियारत का इरादा करते हैं। काबा की तामीर (निर्माण) किसने की? किस मक़सद (उद्देश्य) के लिए की? काबा की ज़ियारत, तवाफ़ (परिक्रमा) और दूसरे मनासिके-हज (हज के अरकान) का मक़सद क्या है? हज की हक़ीक़त और रूह को समझने के लिए इन सवालों का जवाब जानना ज़रूरी है।

तौहीद

'काबा' की तामीर हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने अपने बेटे इसमाईल (अलैहि०) के साथ मिलकर की। हज़रत इबराहीम (अलैहि०) तौहीद (एकेश्वरवाद) की तरफ़ बुलानेवाले और अल्लाह के नबी और रसूल थे। उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी तौहीद की तरफ़ बुलाने और उसे क़ायम करने में लगा दी। इस दावत की ख़ातिर उन्होंने हर तरह की तकलीफ़ें उठाईं। बाप ने घर से निकाला, क़ौम ने दुश्मनी करने में कोई कमी न छोड़ी, वक़्त की हुकूमत ने उनको ज़िन्दा जला देने का फ़ैसला किया। अल्लाह ने उनको उस आग से बचा लिया। आख़िरकार उनको इसी तौहीद की दावत के जुर्म में अपने घर, अपनी क़ौम और अपने देश को हमेशा के लिए छोड़ना पड़ा। यह

सबकुछ हुआ, मगर अल्लाह को पहचाननेवाले उस बुज़ुर्ग ने तौहीद की दावत से मुँह न मोड़ा। वे वतन से निकलकर शाम (सीरिया) गए, फ़लस्तीन पहुँचे और फिर मिस्र और हिजाज़ (सऊदी अरब) की ख़ाक छानी। यह सबकुछ सिर्फ़ इसलिए किया कि तौहीद का पैग़ाम भटकी हुई दुनिया तक पहुँचा दें। आख़िरकार उन्होंने अल्लाह के हुक्म से अल्लाह की बन्दगी और तौहीद की दावत का एक मरकज़ (केन्द्र) बनाया। यह मरकज़ 'काबा' था, जो हिजाज़ की रेगिस्तानी ज़मीन पर बनाया गया था, जहाँ न पानी था और न हरियाली। उन्होंने अपने बड़े बेटे हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) को इस रेगिस्तानी ज़मीन के इलाक़े में बसाया, ताकि तौहीद की दावत फैलाने और शिर्क को मिटाने में वे बाप के मददगार हों और उनके बाद उनकी औलाद इस बड़े काम को सम्भाले।

'काबा' की तामीर और हज की शुरुआत का ज़िक्र करते हुए अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में फ़रमाया—

> "याद करो उस बात को कि हमने इबराहीम के लिए अपने घर की जगह ठहराई (यह कहते हुए) कि मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न करो और मेरे घर को तवाफ़ (परिक्रमा) करनेवालों और (इबादत में) खड़े होनेवालों और झुकने और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखो और लोगों में हज के लिए आने की पुकार लगा दो वे तुम्हारे पास हर दूर के मक़ाम से पैदल और छरेरे बदन की ऊँटनियों पर सवार आएँगे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयतें-26, 27)
>
> "यह है हज, और जो कोई अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हुरमतों (मर्यादाओं) का आदर करेगा, तो उसके रब के यहाँ ख़ुद उसी के लिए अच्छा होगा और तुम्हारे लिए चौपाए हलाल किए गए, सिवाय उनके जो तुम्हें बताए जा चुके हैं (यानी मुरदार और मुशरिकाना चढ़ावे वग़ैरा)। तो बुतों से बचो जो पूरे-के-पूरे नापाक हैं और झूठी बात (शिर्क) से बचो, हर तरफ़ से कटकर अल्लाह के बन्दे बनो और जो कोई अल्लाह के साथ किसी को

शरीक करे तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा जिसको या तो (शिकारी) परिन्दे उचक ले जाएँगे। या हवा उसे किसी गहरे खड्डे में ले जाकर गिरा देगी।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयतें-30, 31)

इसी बात को क़ुरआन में कहीं मुख़्तसर और कहीं तफ़सील से जगह-जगह बयान किया गया है। इन तमाम आयतों से मालूम होता है कि ख़ुदा के घर काबा की तामीर का असली और बुनियादी मक़सद यह है कि वह अल्लाह के साथ किसी को शरीक किए बिना उसकी बन्दगी का मरकज़ बने और उसके ज़रिए से शिर्क की जड़ कट जाए और उसका ख़ातिमा हो जाए। तौहीद किस चीज़ का नाम है? और शिर्क किसे कहते हैं? इसका जानना एक मुसलमान के लिए हर चीज़ के जानने से ज़्यादा ज़रूरी है, क्योंकि बिना शिर्क को छोड़े और तौहीद को अपनाए न इनसान का ईमान एतिबार के क़ाबिल है और न उसकी नजात मुमकिन है। क़ुरआन में है—

"यक़ीनन अल्लाह इस (गुनाह) को (कभी) माफ़ नहीं करेगा कि उसके साथ किसी को शरीक किया जाए। और इसके सिवा कोई भी गुनाह हो, उसे वह जिसके लिए चाहेगा माफ़ कर देगा। और जो अल्लाह के साथ किसी को शरीक करता है वह भटककर बहुत दूर जा पड़ता है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-116)

एक और जगह पर अल्लाह फ़रमाता है—

"यह एक हक़ीक़त है कि जिसने अल्लाह के साथ (किसी को) शरीक किया, अल्लाह उसपर (अपनी) जन्नत हराम कर चुका है, ऐसे शख़्स का ठिकाना बस जहन्नम है और ऐसे ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं होगा।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-72)

बेशक नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात इस्लाम के अहम सुतून (खम्बे) हैं। लेकिन ईमान उनसे भी अहम और ज़रूरी है क्योंकि उसकी हैसियत इस्लाम की बुनियाद और आधार की है। अगर ईमान सही न हो तो कोई

इबादत और कोई अमल क़बूल नहीं होगा और ईमान के सही और ठीक हो जाने के बाद हर सही अमल एतिबार के क़ाबिल है। यह है ईमान का मक़ाम! और ईमान की सबसे अहम और सबसे बुनियादी बात यह है कि इनसान शिर्क को छोड़कर तौहीद का रास्ता अपनाए। यह इस्लाम का सबसे पहला तक़ाज़ा और अल्लाह की बन्दगी की राह पर पहला क़दम है, जिसे उठाए बिना कोई अगला क़दम नहीं उठाया जा सकता। और अगर उठाया जाएगा तो वह ख़ुदा की बन्दगी और उसके दीन के रुख़ पर न होगा।

यही वजह है कि तमाम नबियों ने सबसे पहले जिस बात की दावत दी, सबसे ज़्यादा जिस बात पर ज़ोर दिया और ज़िन्दगी के आख़िरी लमहे तक जिस चीज़ पर लगातार ज़ोर देते रहे, वह शिर्क से बचना और तौहीद पर जम जाना था। हर नबी की दावत का अस्ल मक़सद क़ुरआन में यह बताया गया—

> "अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयतें-59, 65, 73, 85; सूरा-11 हूद, आयतें-50, 61, 84)

ख़ुद क़ुरआन को ग़ौर से देख जाइए, वह शिर्क के रद्द और तौहीद के सुबूत और उसके तक़ाज़ों की तफ़सील से भरा हुआ नज़र आएगा।

आइए अब ज़रा यह देख लें कि तौहीद क्या है और शिर्क किसे कहते हैं?

क़ुरआन और हदीसों की वाज़ेह और रौशन तफ़सीलात से तौहीद की जो हक़ीक़त खुलकर सामने आती है, वह यह है कि अल्लाह के सिवा इनसान का और इस पूरी कायनात का न कोई पैदा करनेवाला और पालनेवाला है, न मालिक और तदबीर करनेवाला और न ही कोई हाकिम। उसी एक हस्ती के हाथ में पूरी कायनात की बागडोर है और उसी की हुकूमत चप्पे-चप्पे और ज़र्रे-ज़र्रे पर छाई हुई है। उसकी हुकूमत, उसकी हाकिमियत और बादशाहत और उसके रब होने और उसकी ख़ुदाई में कोई भी उसका शरीक नहीं। नफ़ा और नुक़सान, ख़ुशहाली और बदहाली, बीमारी और

तन्दुरुस्ती, ज़िन्दगी और मौत, सबकुछ उसी की क़ुदरत में है। उसके सिवा न कोई काम बनानेवाला और मुश्किल को टालनेवाला है, न दुआओं को सुनने और मुरादों को पूरा करनेवाला और न ही इबादत और बन्दगी का हक़दार। उसके फ़ैसलों को कोई बदलनेवाला और उसके हुक्म को कोई रोकनेवाला नहीं। मालिक व हाकिम और पालनहार व माबूद केवल वही है, बाक़ी सब उसी के ग़ुलाम, सब उसकी रय्यत और सब उसके बेबस बन्दे हैं, उस एक हस्ती के सिवा न किसी के आगे सिर झुकाना सही है और न किसी की इबादत और बन्दगी करना। न किसी से दुआएँ माँगना और हाजतें और मुरादें तलब करना ठीक है और न किसी से मन्नतें मानना जाइज़। उसी की हिदायत, हिदायत है, उसी का दीन, दीन है और उसी का उतारा हुआ क़ानून, क़ानून है। भरोसा उसी पर करना चाहिए, डर उसी का होना चाहिए, तक़्वा उसी का अपनाना चाहिए, ग़ुलामी उसी की होनी चाहिए और उसी की रिज़ा और पसन्द को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाना चाहिए। यही तौहीद है और इसके ख़िलाफ़ रवैया शिर्क।

इस्लामी इबादतें और अरकान इसी तौहीद की याददिहानी और इसी की हक़ीक़त को इनसानी दिलो-दिमाग़ में बिठाने और जमा देने के लिए हैं। जैसा कि ऊपर आ चुका है, इस्लाम का पहला रुक्न (स्तम्भ) जिसकी अदाएगी के बिना कोई आदमी मुसलमान नहीं हो सकता, वह यह है कि इनसान पक्के यक़ीन और पूरे विश्वास के साथ इस बात की गवाही दे कि "अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद (सल्ल॰) उसके बन्दे और रसूल हैं।" हक़ीक़त में यह इस बात का अहद (संकल्प) है कि मोमिन शिर्क से बचेगा और पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह की इताअत और ग़ुलामी और अल्लाह के रसूल के ज़रिए लाए हुए दीन का पालन करेगा।

नमाज़ इसी बात को दिन में पाँच बार पूरे ज़ोर के साथ याद दिलाती है, वह बताती है कि इनसान को ख़ुदा ही के आगे हाथ बाँधकर खड़े होना चाहिए। उसी के आगे झुकना और सजदा करना चाहिए और उसी के आस्ताने (चौखट) को अपना क़िबला और अपनी सजदे की जगह बनाना चाहिए। वह बार-बार याद दिलाती है कि बड़ाई और किबरियाई (महानता)

उसी के लिए है। नमाज़ साफ़-साफ़ बताती है अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और वह हर ऐब, कमी और शिर्क से पाक और बुलन्द है। वह इनसान से इस बात को मनवाती है कि वह सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी करेगा और उसी से मदद माँगेगा। वह हर अज़ान और हर तशह्हुद (बैठकर अत्तहीयात पढ़ना) में इस हक़ीक़त को पूरी तरह उभारती है कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत और बन्दगी का हक़दार नहीं। माबूद सिर्फ़ वही है, बाक़ी सब उसके बन्दे हैं। यहाँ तक कि सबसे बेहतर इनसान और आख़िरी नबी मुहम्मद (सल्ल०) भी उसके बन्दे और उसके रसूल ही हैं, ख़ुदा या ख़ुदाई में शरीक नहीं।

हज भी इसी हक़ीक़त की याददिहानी और इसी यक़ीन को पुख़्ता करने के लिए है। यह बात शुरू में ही आ चुकी है कि काबा की तामीर सिर्फ़ इसी लिए हुई थी कि वह ख़ुदा की इबादत, बन्दगी और तौहीद की दावत का मरकज़ बने। हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने ख़ुदा के इस घर की तामीर के वक़्त यह दुआ की थी—

> ऐ मेरे रब! इस इलाक़े को अमनवाला बना दे, और मुझे और मेरी औलाद को बुतों की इबादत करने से बचा। ऐ मेरे रब! इन बुतों ने बहुत-से लोगों को गुमराह किया है। तो जो कोई मेरे रास्ते पर चले, वह मेरा है और जो मेरे तरीक़े से फिर जाए तो (ऐ हमारे रब!) जब भी तू बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। ऐ हमारे रब! मैंने एक ऐसी घाटी में जो खेती के लायक़ नहीं अपनी औलाद का एक हिस्सा तेरे मुहतरम घर के पास बसा दिया है, इसलिए ताकि ऐ हमारे रब! ये नमाज़ क़ायम करें।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयतें-35-37)

काबा एक ऐसी इमारत है जिसमें न कोई मज़ार है, न कोई तस्वीर, न कोई मूर्ति है और न कोई बुत। वह तो सिर्फ़ अल्लाह की इबादत और बन्दगी की जगह है, जिसमें किसी और की इबादत और बन्दगी की कोई मिलावट नहीं। इस्लाम से पहले जाहिलियत के ज़माने में अरब के लोगों ने

अल्लाह के इस घर को अपने बुज़ुर्गों और पैग़म्बरों की तस्वीरों, चित्रों और बूतों से भर रखा था। नबी (सल्ल॰) को पैग़म्बर बनाकर भेजे जाने का एक बड़ा मक़सद यह भी था कि तौहीद के इस मरकज़ को शिर्क की तमाम गन्दगियों से पाक कर दें। इसलिए मक्का की विजय के मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने सबसे पहला काम यही किया कि तौहीद के इस मरकज़ को शिर्क की तमाम गन्दगियों से पाक करके उसे फिर तौहीद का मरकज़ बना दिया।

जाहिलियत के ज़माने में मुशरिक लोग बड़े जोश-ख़रोश से हज करते थे, लेकिन शिर्क से भरे हुए आमाल और संस्कारों के साथ वे तलबियह इस तरह कहते— لَبَّيْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ إِلَّا شَرِيْكًا هُوَ لَكَ تَمْلِكُهُ وَمَا مَلَكَ

लब्बैक, ला शरी-क ल-क इल्ला शरीकन हु-व ल-क तमलिकुहू व मा मलक।

> "मैं हाज़िर हूँ (ऐ अल्लाह!) तेरा कोई शरीक नहीं, सिवाय एक शरीक के जो तेरा ही है; तू उसका मालिक है और उसकी ममलूका (अधिकृत) चीज़ों का।"

नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह के इस हुक्म से न सिर्फ़ यह कि इन शिर्क से भरे हुए आमाल और संस्कारों को बन्द कर दिया, बल्कि मुशरिकों को उनके शिर्क के सबब हज करने ही से रोक दिया। क़ुरआन में अल्लाह फ़रमाता है—

> "ऐ ईमानवालो! मुशरिक तो बिलकुल नापाक हैं। इसलिए ये इस साल के बाद मसजिदे-हराम (काबा) के पास न फटकने पाएँ।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-28)

अल्लाह के इसी हुक्म को पूरा करने के लिए नबी (सल्ल॰) ने एलान कर दिया कि कोई मुशरिक हज करने न आए। अल्लाह और नबी (सल्ल॰) के इस हुक्म से पता चला कि शिर्क के होते हुए न सिर्फ़ यह कि हज क़बूल नहीं होगा, बल्कि ऐसे आदमी को काबा के क़रीब भी जाने का हक़ नहीं है और यह इसी लिए है कि हज की रूह तौहीद है और काबा तौहीद का मर्कज़ है।

काबा के एक कोने में एक काला पत्थर है, जिसे 'हजरे-असवद' कहते हैं। इस लफ़्ज़ का मतलब है 'काला पत्थर'। यह पत्थर किसी चीज़ की मूर्ति नहीं है, न इसमें कोई चित्र या नक़्शो-निगार हैं, इसे चूमकर या इसकी तरफ़ इशारा करके काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) शुरू किया जाता है और यह सिर्फ़ इसलिए है ताकि वाज़ेह हो जाए कि आस्ताने को चूमना भी ख़ुदा के लिए ख़ास है। इस पत्थर को चूमने से किसी नासमझ का ज़ेहन मूर्तिपूजा और बुतपरस्ती की तरफ़ न चला जाए, इस ख़तरे को भाँपकर दीन को गहराई और बारीक़ी से जाननेवाले हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) ने 'हजरे-असवद' (काले-पत्थर) को सम्बोधित करके फ़रमाया—

> "मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि (ऐ हजरे-असवद!) तू सिर्फ़ एक पत्थर ही है, तेरे हाथ में न नफ़ा है न नुक़सान। अगर मैंने नबी (सल्ल॰) को तुझे चूमते हुए न देखा होता तो मैं तुझे (हरगिज़) न चूमता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने ऐसा इसलिए फ़रमाया कि सबको मालूम हो जाए कि ख़ुदा के सिवा कोई नफ़ा या नुक़सान पहुँचानेवाला नहीं है और न ख़ुदा के आस्ताने के सिवा कोई आस्ताना (चौखट) चूमने के लायक़ ही है।[1]

हज के दौरान उठते-बैठते, चलते-फिरते जो ज़िक्र लगातार और बार-बार किया जाता है, वह तौहीद की बड़े अच्छे ढंग से याददिहानी और इज़हार है—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ ، لَبَّيْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ ، اِنَّ الْحَمْدَ
وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क लब्बैक, इन्नल-हम-द वन्निअ्-म-त ल-क वल-मुल-क ला शरी-क लक।

---

1. कुछ ग़ैर-मुस्लिम हजरे-असवद के चूमने को मूर्तिपूजा ठहराते हैं। हालाँकि कोई मुसलमान न हजरे-असवद में ख़ुदाई सिफ़ात समझता है और न उसे किसी देवता की मूर्ति ही मानता है और न ही चूमने को इबादत या पूजा कह सकता है। चूमना प्रेम और श्रद्धा या अक़ीदत के ज़ाहिर करने के लिए होता है। इनसान अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपने दोस्तों और अपने बुज़ुर्गों को चूमता है और कभी किसी के मन में यह ख़्याल नहीं आता कि वह पूजा कर रहा है। अरब में मुलाक़ात के साथ चूमने का आम रिवाज है।

"हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, (तेरे दरबार में) मैं हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं! मैं हाज़िर हूँ! बेशक 'हम्द' (तारीफ़ और शुक्र) तेरे ही लिए है, सब नेमतें तेरी ही हैं, और इक़तिदार (हुकूमत) भी तेरे ही लिए है, (इनमें) तेरा कोई शरीक नहीं।"

(हदीसःइब्ने-माजा, बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद)

नबी (सल्ल॰) ने 'सफ़ा' और 'मरवा' पहाड़ियों पर चढ़ने के बाद जिस तरह अल्लाह को याद किया था और जिसकी पैरवी हर हाजी के लिए सुन्नत है, उससे भी तौहीद की बेहतरीन याददिहानी होती है—

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ، لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى

كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ، لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ، اَنْجَزَ وَعْدَهٗ وَنَصَرَ عَبْدَهٗ وَهَزَمَ الْاَحْزَابَ وَحْدَهٗ

अल्लाहु अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू, लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्-दहू अन्-ज-ज़ वअ्दहू व न-स-र अब्दहू व ह-ज़-मल-अहज़ा-ब वह्-दहू।

"अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, सिर्फ़ वही माबूद है। उसका कोई शरीक नहीं, उसी की बादशाहत है और उसी की तारीफ़ और शुक्र है और वह हर चीज़ पर कुदरत रखता है। अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं सिर्फ़ वही माबूद है, उसने अपना वादा पूरा किया। अपने बन्दे (हज़रत मुहम्मद सल्ल॰) की मदद की और दल-की-दल फ़ौजों को अकेले शिकस्त दी।" (हदीस : मुस्लिम)

हज का बहुत ज़रूरी हिस्सा 'अरफ़ात' में ठहरना है। इस मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने जिसे सबसे बेहतर दुआ बताई है, वह यह है—

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ، لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ

الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ

ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्-दहू ला शरी-क लहू, लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर।

"अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, सिर्फ़ वही माबूद है, उसका कोई शरीक नहीं, उसी के लिए बादशाहत है और उसी की तारीफ़ और शुक्र है, और वह हर चीज़ पर कुदरत रखता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस ज़िक्र और दुआ में भी पूरे तौर पर तौहीद (एकेश्वरवाद) ही का एलान और इक़रार है।

क़ुरबानी करते समय जो दुआ पढ़नी नबी (सल्ल॰) से साबित है, वह यह है–

اِنِّیْ وَجَّهْتُ وَجْهِیَ لِلَّذِیْ فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضَ، عَلٰی مِلَّةِ اِبْرَاهِیْمَ حَنِیْفًا وَّ مَا اَنَا مِنَ الْمُشْرِکِیْنَ. اِنَّ صَلٰوتِیْ وَنُسُکِیْ وَ مَحْیَایَ وَ مَمَاتِیْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ، لَا شَرِیْكَ لَهٗ وَ بِذٰلِكَ اُمِرْتُ وَ اَنَا مِنَ الْمُسْلِمِیْنَ.
اَللّٰهُمَّ لَكَ وَ مِنْكَ عَنْ....بِسْمِ اللّٰهِ وَ اللّٰهُ اَکْبَرُ.

इन्नी वज्जहतु वजहि-य लिल्लज़ी फ़-तरस्समावाति वल-अर-ज़ अला मिल्लति इबराही-म हनीफ़ौं व मा अ-न मिनल-मुशरिकीन, इन-न सलाती, व नुसुकी व मह्या-य व ममाती लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन, ला शरी-क लहू व बिज़ालि-क उमिरतु व अ-न मिनल-मुसलिमीन। अल्लाहुम-म ल-क व मिन्-क अन......बिसमिल्लाहि वल्लाहु अकबर।

"बेशक मैंने हर तरफ़ से यकसू होकर इबराहीम (अलैहि॰) के तरीक़े पर अपना रुख़ उस ख़ुदा की तरफ़ कर लिया जिसने ज़मीन और आसमानों को पैदा किया और मेरा शिर्क से कोई ताल्लुक़ नहीं। मेरी नमाज़, मेरी क़ुरबानी, मेरी ज़िन्दगी और मेरी मौत सब अल्लाह के लिए है, जो कायनात का रब है, और जिसका कोई शरीक नहीं, मुझे इसी का हुक्म मिला है और मैं मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हूँ। ऐ अल्लाह! यह क़ुरबानी तेरे ही लिए है और तेरी ही तरफ़ से अता की गई है।.......... (शख़्स का नाम) आदमी की तरफ़ से, अल्लाह के नाम से, और

अल्लाह ही सबसे बड़ा है।"

(हदीस : अबू दाऊद, दारमी, इब्ने-माजा, अहमद)

यह ज़िक्र और दुआ क्या है? तौहीद और उसके तक़ाज़ों की तफ़सील है। हज या उमरे में वापसी पर रास्ते में जो ज़िक्र और दुआ नबी (सल्ल॰) से साबित है उसे भी ज़ेहन में बिठा लीजिए। वह यह है—

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ، لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ، اٰئِبُوْنَ تَائِبُوْنَ عَابِدُوْنَ سَاجِدُوْنَ لِرَبِّنَا حَامِدُوْنَ صَدَقَ اللّٰهُ وَحْدَهٗ وَنَصَرَ عَبْدَهٗ وَهَزَمَ الْاَحْزَابَ وَحْدَهٗ۔

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू ला शरी-क लहू, लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु, व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर, आइबू-न ताइबू-न, आबिदू-न साजिदू-न लि-रब्बिना हामिदू-न, स-द-क़ल्लाहु वअ्दहू व न-स-र अब्दहू व ह-ज़-मल अहज़ा-ब वह्-दहू।

"अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह ही बड़ा है! अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, सिर्फ़ वही माबूद है, उसका कोई शरीक नहीं, उसी के लिए बादशाहत है और तारीफ़ और शुक्र उसी का है, वह हर चीज़ पर कुदरत रखता है। हम पलटते हैं (खुदा की तरफ़), हम तौबा करते हैं, हम बन्दगी करते हैं, हम सजदे करते हैं, और हम अपने रब की तारीफ़ अदा करते हैं। अल्लाह ने अपना वादा पूरा किया, अपने बन्दे (मुहम्मद सल्ल॰) की मदद की और दल-की-दल फ़ौजों को अकेले ही शिकस्त दी।"

इस ज़िक्र और दुआ में भी तौहीद और उसके तक़ाज़ों की तफ़सील बयान की गई है और शिर्क का रद्द किया गया है।

ये हैं वे दुआएँ जो हज के बारे में नबी (सल्ल॰) से साबित हैं और इन सबका एक ही मक़सद है और वह है शिर्क की ज़र्रा-भर बात से भी दिल और दिमाग़ को पाक करना और तौहीद और उसके तक़ाज़ों को दिमाग़ में बिठा देना।

इन दुआओं के साथ अल्लाह के घर का तवाफ़, उसकी तरफ़ मुँह करके खुशू-खुज़ू (विनम्रता) के साथ नमाज़ों की अदाएगी, मस्जिदे-हराम (काबा) में रो-रोकर अल्लाह से दुआएँ माँगना, अल्लाह के लिए क़ुरबानी करना और सबकुछ भूलकर हर आन अल्लाह की तरफ़ पलटना और उससे गहरा ताल्लुक़ रखना, ये सब इसी लिए है कि इनसान अपनी इबादत और बन्दगी को अल्लाह के लिए ख़ास कर दे, ताकि शिर्क की गन्दगी से उसकी ज़िन्दगी पाक हो जाए।

यह है हज का सही और बुनियादी मक़सद। हमने इसे वाज़ेह करने में ज़रा तफ़सील से काम लिया है, क्योंकि इसकी अहमियत इसी का तक़ाज़ा करती थी। आमतौर पर लोग हज के इस मक़सद से बेख़बर हैं और इससे भी ज़्यादा जो बात इस तफ़सील का सबब बनी वह यह है कि मुसलमानों की बड़ी तादाद अपनी बेइल्मी और नासमझी की वजह से तौहीद और उसके तक़ाज़ों से ग़ाफ़िल और मुशरिकाना ख़यालात और रस्मों व रिवाजों में लतपत है। फिर इन्हीं मुशरिकाना ख़यालात और आमाल के साथ ये लोग हज को चल देते हैं। अपने हज के सफ़र की शुरुआत अल्लाह के सिवा ग़ैरों से मदद और उन्हीं की नज़्रो-नियाज़ से करते हैं। रास्ते में अगर कोई मुसीबत घेर ले तो भी अल्लाह को छोड़कर दूसरों को पुकारते हैं और अफ़सोस तो यह है कि मक्का की पाक ज़मीन पर भी, जो कि तौहीद का मर्कज़ (केन्द्र) है, ये मुशरिकाना हरकतें उनसे चिमटी रहती हैं। कभी नबी (सल्ल०) के मुबारक रौज़े पर भी ऐसी हरकतें करते हैं जो तौहीद से बिलकुल भी मेल नहीं खातीं और कभी सहाबा किराम (रज़ि०), प्यारे नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों और उम्मत के बुज़ुर्गों के मज़ारों और स्मारकों पर मुशरिकाना काम करने लगते हैं। हालाँकि इन पाक हस्तियों की निगाह में शिर्क से ज़्यादा घिनावनी और नापसन्दीदा चीज़ और कोई न थी।

यह बात अच्छी तरह समझ लीजिए कि इस्लाम के तमाम आमाल (कर्म), तमाम इबादतें और ख़ुद हज की रूह और बुनियाद तौहीद ही है, और शिर्क इस्लाम और ईमान के बिलकुल उलट है। कोई भी काम करने से पहले सबसे पहला काम यह करना ज़रूरी है कि इनसान अपने दिल और दिमाग़

को शिर्क के हर धब्बे से और मुशरिकाना रस्मो-रिवाज, तौर-तरीक़ों और आमाल की हर गन्दगी से अपनी ज़िन्दगी को पाक करे और ख़ालिस तौहीद की राह पर चल पड़े। इसके बिना न ईमान सलामत है, न अमल क़बूल होता है और न नजात और कामयाबी की उम्मीद ही बाक़ी रहती है। क़ुरआन में नबियों का ज़िक्र करने के बाद फ़रमाया—

> "और अगर ये लोग शिर्क करते तो उनका सब किया-धरा अकारथ हो जाता।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-88)

नबी (सल्ल॰) को मुख़ातब (सम्बोधित) करते हुए क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया—

> "(ऐ नबी!) कह दो, ऐ नादानो! क्या तुम मुझे यह हुक्म दे रहे हो कि मैं अल्लाह के सिवा किसी और की इबादत करने लगूँ? हालाँकि (ऐ नबी!) तुम्हारी तरफ़ और तुमसे पहले गुज़रे हुए नबियों की तरफ़ यह वह्य की जा चुकी है कि अगर तुम ने शिर्क किया तो तुम्हारा किया-धरा बरबाद (अकारथ) हो जाएगा और तुम (दुनिया व आख़िरत में) सख़्त घाटे में रहोगे।"
> (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयतें-64, 65)

यह है शिर्क की ख़राबी और तौहीद की अहमियत। इसलिए आपके लिए सबसे पहला और सबसे अहम काम यह है कि हज का सफ़र शुरू करने से पहले अपने दिल, दिमाग़ और अपनी ज़िन्दगी का बारीकी से जायज़ा लें और अगर आपके दामन पर शिर्क की इस गन्दगी की एक छींट भी लगी हो तो पहले उसे साफ़ करें। आगे के लिए शिर्क से बचने और तौहीद के तक़ाज़ों को पूरा करने का पक्का इरादा करें, अपने हज को शिर्क के हर धब्बे से भी बचाएँ और हज इस तरह अदा करें कि ख़ालिस तौहीद आपकी नस-नस में रच बस जाए। अगर आपने ऐसा कर लिया तो आपने बहुत बड़ी हद तक हज का हक़ अदा कर दिया और अगर आप यह सब न कर सके तो यक़ीन जानिए कि आपकी नमाज़ और आपकी इबादतें ही नहीं, आपका ईमान भी बड़े ख़तरे में है। काश! आप इस ख़तरे की शिद्दत (सख़्ती) को

महसूस करें।

इस्लाम और यकसूई

काबा की तामीर सबसे पहले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने ही की थी और उन्होंने ही सबसे पहले हज के लिए लोगों को बुलाया। क़ुरआन में उनकी जिस ख़ुसूसियत को सबसे ज़्यादा उभारा गया है, वह यह है कि वे हनीफ़ (यकसू) और मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) थे।

> "इबराहीम न यहूदी था और न ईसाई, बल्कि वह तो हनीफ़ और मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) था, और शिर्क से उसका कोई ताल्लुक़ न था।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-67)

हनीफ़ उसको कहते हैं जो अल्लाह की तरफ़ पूरी तरह झुक चुका हो, जो हक़ के ख़िलाफ़ हर हुकूमत और इक़तिदार से कटकर अपना ताल्लुक़ अल्लाह से जोड़ चुका हो, जो तमाम बातिल रास्तों से मुँह मोड़कर हक़ के रास्ते पर यकसूई के साथ चल पड़ा हो। इसी हनीफ़ियत का एलान हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अपनी क़ौम के सामने इन अलफ़ाज़ में किया था—

> "मैंने हर तरफ़ से कटकर अपना रुख़ उस हस्ती की तरफ़ कर लिया है जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया, और मैं शिर्क करनेवाला नहीं हूँ।"(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-79)

अल्लाह तआला हर ईमानवाले से इसी हनीफ़ियत और यकसूई का मुतालबा करता है और यही दीने-हक़ की अस्ल रूह है। ख़ुदा कहता है—

> "हनीफ़ (यकसू) होकर दीन के लिए अपना रुख़ सीधा करो और शिर्क का रास्ता हरगिज़ न अपनाओ।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-105)
>
> "और इन्हें हुक्म नहीं दिया गया था, मगर इस बात का कि अल्लाह की बन्दगी करें दीन को उसी के लिए ख़ालिस करके, यकसू होकर, और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें और यही ठोस दीन है।" (क़ुरआन, सूरा-98 बय्यिनह, आयत-5)

और 'मुस्लिम' उसको कहते हैं जो तमाम सलाहियतों के साथ अपने-आपको और अपनी पूरी ज़िन्दगी को अल्लाह की बन्दगी और ताबेदारी में दे चुका हो और अल्लाह की राह में सबकुछ क़ुरबान करने को तैयार हो। इस सिपुर्दगी और हवालगी, इस बन्दगी और ताबेदारी और इस क़ुरबानी का नाम इस्लाम है। क़ुरआन में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की तारीफ़ करते हुए अल्लाह से उनके इस ताल्लुक़ को इस ढंग से पेश किया गया है—

> "जब उसके रब ने उससे (इबराहीम से) कहा, ताबेदारी अपनाओ। उस (इबराहीम) ने कहा, मैं अपने-आपको सारे आलम के मालिक की ताबेदारी और फ़रमाँबरदारी में देता हूँ।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-131)

और जब दूसरी क़ुरबानियों के बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने इकलौते बेटे की क़ुरबानी करने को तैयार हो गए और बेटा भी अल्लाह की राह में ख़ुशी-ख़ुशी जान देने को तैयार हो गया तो अल्लाह ने उनकी इस क़ुरबानी को इस्लाम (ख़ुदसिपुर्दगी) कहा—

> "तो जब दोनों ने इस्लाम अपना लिया (यानी ख़ुदा के सिपुर्द कर दिया) और बाप ने बेटे को कनपटी के बल लिटाया।
>
> (क़ुरआन, सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयत-103)

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की पूरी ज़िन्दगी इसी हनीफ़ियत और इसी इस्लाम की खुली गवाह है। उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की ख़ुशी में लगा दी। उन्होंने हर तरफ़ से कटकर पूरी यकसूई के साथ हक़ की पैरवी की। उन्होंने अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए अपने बाप, अपने घर, अपने वतन और अपने सुख और आराम को क़ुरबान कर दिया। दुनियावी हैसियत से अपने रौशन मुस्तक़बिल को अपने हाथों बरबाद कर दिया, यहाँ तक कि बुढ़ापे में बिलकुल मायूस हो जाने के बाद अल्लाह ने एक बेटा दिया तो अल्लाह ही के एक इशारे पर अपने उस इकलौते बेटे को ख़ुदा के नाम पर क़ुरबान करने को तैयार हो गए।

इसी हनीफ़ियत (यकसूई) और इसी इस्लाम का एलान नबी (सल्ल॰) की

ज़बानी क़ुरआन मजीद में कराया गया है। यह एलान आप (सल्ल॰) ही की तरफ़ से नहीं, आप (सल्ल॰) के एक-एक उम्मती की तरफ़ से भी है और इसके तक़ाज़ों को पूरा करना हर उम्मती (मुसलमान) का बुनियादी फ़र्ज़ है—

> "(ऐ नबी!) कह दो, यक़ीनन मेरे रब ने मुझे सीधा रास्ता दिखा दिया है, बिलकुल ठीक दीन यानी इबराहीम का रास्ता, जो हनीफ़ (यकसू) थे और वे मुशरिक न थे।
>
> कह दो, यक़ीनन मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानी, मेरा जीना और मेरा मरना (सबकुछ) अल्लाह के लिए है, जो सारे जहान का रब है। उसका कोई शरीक नहीं। मुझे इसी का हुक्म मिला है, और मैं सबसे पहले अपने-आपको उसके सिपुर्द करता हूँ।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयतें-161 से 163)

यही इस्लाम (ख़ुदा के आगे ख़ुदसिपुर्दगी) काबा की तामीर का मक़सद है, जैसा कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) की उस दुआ से, जो उन्होंने काबा की तामीर के वक़्त माँगी थी, वाज़ेह होता है—

> "और याद करो उस बात को कि इबराहीम (अल्लाह के) घर की बुनियाद उठा रहे थे, और इसमाईल (और कहते जाते थे) ऐ हमारे रब! हमारी तरफ़ से (इस तामीर को) क़बूल कर ले। यक़ीनन तू सबकी सुननेवाला और सबकुछ जाननेवाला है। ऐ हमारे रब! हम दोनों को अपना मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) बना और हमारी नस्ल में ऐसी उम्मत पैदा फ़रमा जो तेरी फ़रमाँबरदार हो, हमें हमारी इबादत के तरीक़े सिखा दे, हमपर रहमत और मग़फिरत के साथ तवज्जोह कर। यक़ीनन तू तौबा क़बूल करनेवाला, रह्म करनेवाला है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-127, 128)

अल्लाह के लिए यही सिपुर्दगी व ताबेदारी और यही इख़लास (निष्ठा) व यकसूई हज का मक़सद भी है। इसलिए सूरा-22 हज में 'हज' के

मनासिक (संस्कार) और तरीक़ों का ज़िक्र करते हुए फ़रमाया गया–

> "अल्लाह के लिए हनीफ़ (यकसू) होकर, उसके साथ किसी को शरीक न ठहराते हुए।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-31)

फिर दो आयतों के बाद हज और क़ुरबानी की रूह यह बताई गई है कि इनसान अपने-आपको अल्लाह की इताअत, ताबेदारी और उसकी सिपुर्दगी में दे दे–

> "और हर गरोह के लिए हमने क़ुरबानी का तरीक़ा तय किया है, ताकि वे उन मवेशी जानवरों पर अल्लाह का नाम लें, जो उसने उन्हें अता किए हैं, तो तुम्हारा इलाह अकेला इलाह है, तो अपने-आपको उसी की फ़रमाँबरदारी में दे दो। और (ऐ नबी!) उन्हें ख़ुशख़बरी दे दो जो अपने-आपको अल्लाह के आगे डाल देते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-34)

और इसी हक़ीक़त को यह दुआ ज़ाहिर करती है जो क़ुरबानी से पहले पढ़ी जाती है–

> "यक़ीनन मैंने हर तरफ़ से यकसू होकर इबराहीम (अलैहि॰) के तरीक़े पर अपना रुख़ उस ख़ुदा की तरफ़ कर लिया जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया है और मैं शिर्क करनेवाला नहीं। यक़ीनन मेरी नमाज़, मेरी क़ुरबानी, मेरी ज़िन्दगी और मेरी मौत (सब) अल्लाह के लिए है जो कायनात का रब है, और जिसका कोई शरीक नहीं, मुझे इसी का हुक्म मिला है और मैं मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हूँ। ऐ अल्लाह! यह क़ुरबानी तेरे ही लिए है और तेरी ही तरफ़ से अता की गई है।........(फ़ुलाँ शख़्स) की तरफ़ से, अल्लाह के नाम से और अल्लाह ही सबसे बड़ा है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी हक़ीक़त पर सूरा-2 बक़रा में एक दूसरे अन्दाज़ से रौशनी डाली गई है। हज के अहकाम बयान करने के फ़ौरन बाद बताया कि कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह की बन्दगी (इबादत) और हज का फ़र्ज़ तो अदा करते हैं मगर

वे अल्लाह के नहीं, अपने फ़ायदों, अपने नफ़्स की ख़ाहिशों और अपनी बड़ाई के पुजारी होते हैं। अल्लाह की बन्दगी के ये झूठे दावेदार हक़ीक़त में जहन्नम में जानेवाले हैं। दूसरी तरफ़ कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका मक़सद अल्लाह की खुशी और उनकी ज़िन्दगी-का मक़सद उसकी इताअत और ताबेदारी है। ये लोग अल्लाह के हक़ीक़ी बन्दे और हक़ीक़त में हज अदा करनेवाले हैं। इस आख़िरी गरोह का ज़िक्र क़ुरआन ने जिन अलफ़ाज़ में किया है उनपर बार-बार ग़ौर करना चाहिए—

> "और कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह की ख़ुशी के लिए अपने-आपको (अल्लाह के हाथ) बेच डालते हैं और अल्लाह ऐसे बन्दों पर बड़ा मेहरबान है। ऐ ईमानवालो! तुम (ख़ुदा और रसूल की) इताअत में पूरे-के-पूरे दाख़िल हो जाओ, और शैतान के पीछे न चलो। यक़ीनन वह तुम्हारा खुला दुश्मन है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-207, 208)

इन आयतों से वाज़ेह होता है कि न सिर्फ़ हज की रूह बल्कि हर मोमिन के ईमान का तक़ाज़ा यह है कि वह अल्लाह की ख़ुशी, उसका क़ुर्ब (सामीप्य), और उसका इनाम हासिल करने के लिए अपनी ज़िन्दगी अल्लाह के हाथ में दे दे और ज़िन्दगी के तमाम मामलों में उसका और उसके रसूल का पूरा फ़रमाँबरदार बनकर रहे। इसलिए अल्लाह तआला ने तमाम ईमानवालों से खुले तौर पर मुतालबा किया है कि वे अपने-आपको ख़ुदा और रसूल की इताअत में दे दें। इसके ख़िलाफ़ रवैया इख़्तियार करने को शैतानी और अंजाम के लिहाज़ से तबाह कर देनेवाला रवैया ठहराया है।

तक़वा (परहेज़गारी)

हज का तीसरा बुनियादी मक़सद यह है कि इनसान के अन्दर न सिर्फ़ तक़वा और परहेज़गारी पैदा हो, बल्कि वह फले-फूले और इनसान की पूरी ज़िन्दगी तक़वे के रंग में रंग जाए।

तक़वा क्या है? तक़वा यह है कि इनसान हर पल अल्लाह के ग़ज़ब और नाराज़गी से डरे और पूरी ज़िन्दगी इस तरह गुज़ारे कि हर-हर क़दम पर

अल्लाह की नाखुशी और नाफ़रमानी से बचने की फ़िक्र हो और उसकी कोशिश भी हो। हज में तक़वा की रूह का पाया जाना कितना ज़रूरी है, इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि क़ुरआन में जहाँ हज के अहकाम बयान हुए हैं वही ईमानवालों को तक़वा अपनाने की तरफ़ बार-बार ध्यान दिलाया गया है। अल्लाह ने हज के ज़िक्र की शुरुआत करते हुए फ़रमाया—

"नेकी तो यह है कि इनसान तक़वा इख़्तियार करे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-189)

फिर फ़रमाया—

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो, ताकि तुम कामयाब हो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-189)

हज के पाक महीनों में जंग की जाए या न की जाए, इस बारे में अहकाम का ख़ातिमा इन अलफ़ाज़ पर किया—

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और जान लो कि अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) के साथ है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-194)

फिर हज की कुछ अहकाम बयान करने के बाद फ़रमाया—

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और जान लो कि अल्लाह सख़्त सज़ा देने वाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-196)

फिर हज की रूह और उसके तक़ाज़े बयान करते हुए फ़रमाया—

"हज के कुछ जाने-पहचाने महीने हैं तो जिस किसी ने इनमें हज का इरादा कर लिया, तो फिर हज के दिनों में उसके (लिए) न तो शहवानी काम (जाइज़) है न कोई गुनाह (नाफ़रमानी) की बात और न कोई लड़ाई-झगड़ा। और जो नेकी भी तुम करोगे, अल्लाह उसे जानता है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

यानी हज के दौरान हर बुराई से बचना और ज़्यादा-से-ज़्यादा नेकियाँ करना ही हज की रूह है। हज के सफ़र या ज़िन्दगी के सफ़र के लिए रास्ते का अस्ल सामान (ज़ादे-राह) क्या है, इसकी तरफ़ निशानदेही करते हुए अल्लाह फ़रमाता है—

> "और (तक़वा का) ज़ादे-राह (पाथेय) लो, क्योंकि सबसे अच्छा ज़ादे-राह (पाथेय) तक़वा (परहेज़गारी) है। ऐ अक़्लवालो! मेरा तक़वा इख़तियार करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

• असली चीज़ ज़ाहिरी आदाब व मरासिम (रसमें) और इबादतों का बाहरी ढाँचा नहीं, बल्कि उनकी रूह और अन्दुरूनी हालत है। इसे वाज़ेह करते हुए फ़रमाया—

> "और गिनती के कुछ दिनों में अल्लाह को याद करो। तो जो दो ही दिनों में जल्दी करके वापसी करे, तो उसके लिए कोई हरज नहीं, और अगर कोई ठहर जाए तो उसपर भी कोई गुनाह नहीं, यह (छूट) उनके लिए है जो (अल्लाह का) डर रखें, और अल्लाह ही से डरो, और जान लो कि तुम्हें उसी के पास इकट्ठा होना है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-203)

यानी अस्ल चीज़ खुदा का डर, उसके हुक्मों को पूरा करने का जज़्बा और उसकी नाफ़रमानी से बचने की कोशिश है। यह जज़्बा और नाफ़रमानी से बचने की कोशिश हो तो मानो सबकुछ है, और अगर यही न हो तो इबादतों के ज़ाहिरी ढाँचे कोई ख़ास क़द्र व क़ीमत नहीं रखते। क़ुरआन में इस हक़ीक़त को इस तरह वाज़ेह किया गया है—

> "अल्लाह को तुम्हारी क़ुरबानियों का गोश्त और ख़ून हरगिज़ नहीं पहुँचता, उस तक तो तुम्हारा तक़वा पहुँचता है।"
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-27)

वह कौन-सा हज होता है जो मक़बूल और गुनाहों को मिटानेवाला होता है? अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इस तरफ़ इस तरह इशारा फ़रमाया—

> "जिस किसी ने अल्लाह के लिए हज किया और (इस हज में)

न कोई शहवानी (कामवासना-सम्बन्धी) बात की और न कोई गुनाह का काम किया तो वह (गुनाहों से ऐसा) पाक हो गया जैसा कि उस वक़्त था जब वह माँ के पेट से पैदा हुआ था।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

बन्दों के हक़ और अधिकार अदा करना

अल्लाह के दीन के दो बुनियादी हिस्से हैं, एक अल्लाह के हक़ और दूसरा बन्दों के हक़, और इनमें से कोई किसी से कम अहम नहीं है। क़ुरआन में जहाँ दीन की बुनियादी तालीमात को बयान किया गया है, वहीं अल्लाह की बन्दगी के तक़ाज़ों के साथ उसके बन्दों के हक़ और अधिकारों को भी तफ़सील के साथ बयान किया गया है, फिर अहकाम की बात को ख़त्म करते हुए दीन की रूह और उसके जौहर (सार) को आख़िर में वाज़ेह किया गया है—

"और अल्लाह की बन्दगी करो और उसके साथ किसी को शरीक न ठहराओ, और माँ-बाप के साथ अच्छा बरताव करो, और रिश्तेदारों, यतीमों, ग़रीबों, रिश्तेदार पड़ोसी, दूर के पड़ोसी, पास बैठनेवाले, मुसाफ़िर और ग़ुलामों के साथ अच्छा बरताव करो। यक़ीनन अल्लाह उन लोगों को पसन्द नहीं करता जो इतरानेवाले और डींग मारनेवाले हैं, जो (लोगों के हक़ अदा करने में) कंजूसी करते, लोगों को कंजूसी करने की नसीहत करते और अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से जो कुछ उन्हें दे रखा है उसे छिपाते हैं। और अल्लाह ने इनकार करनेवालों के लिए रुसवा करनेवाला (अपमानजनक) अज़ाब तैयार कर रखा है।

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें-36, 37)

इन आयतों पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि इनका ज़्यादा हिस्सा बन्दों के हक़ और अधिकारों की अहमियत बता रहा है। आख़िरी अलफ़ाज़ कितने सख़्त हैं—"अल्लाह ने इनकार करनेवालों के लिए रुसवा करनेवाला अज़ाब तैयार कर रखा है।" इन अलफ़ाज़ का मतलब इसके सिवा और क्या है कि जो लोग अल्लाह और उसके बन्दों के हक़ अदा नहीं करते, वे ईमान

का नहीं इनकार का तरीक़ा अपनाते हैं और ऐसे लोगों का अंजाम बड़ा दर्दनाक और बड़ा रुसवाकुन है।

क़ुरआन की तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हदीसें भी बन्दों के हक़ और अधिकारों की तफ़सील और उनकी अहमियत से भरी पड़ी हैं। यहाँ कुछ ऐसी हदीसें बयान की जा रही हैं जो इस बारे में उसूली रहनुमाई करती हैं—

> "मुसलमान वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान महफ़ूज़ (सुरक्षित) रहें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)
>
> "तुममें से कोई आदमी उस वक़्त तक ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक यह बात न हो कि वह अपने भाई के लिए वही कुछ चाहे जो अपने लिए चाहता है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)
>
> "अल्लाह उस आदमी पर रह्म नहीं करेगा जो इनसानों पर रह्म नहीं करता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)
>
> "क्या तुम जानते हो कि दिवालिया कौन है? सहाबा ने अर्ज़ किया, हममें दिवालिया वह आदमी होता है जिसके पास न पैसा हो न सामान! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, मेरी उम्मत में दिवालिया वह है जो क़ियामत के दिन नमाज़, रोज़े, और ज़कात (जैसी नेकियाँ) लेकर (अल्लाह के सामने) आएगा लेकिन उसने किसी को गाली दी होगी, किसी पर तोहमत लगाई होगी, किसी का माल हड़प लिया होगा, किसी का ख़ून किया होगा, किसी को मारा-पीटा होगा, तो जिन-जिनका उसने हक़ मारा होगा उनमें से हर एक को उसकी नेकियाँ दे दी जाएँगी और अगर उसकी नेकियाँ उन लोगों के हुक़ूक़ अदा होने से पहले ही ख़त्म हो जाएँगी तो उन लोगों के गुनाह ले लिए जाएँगे और उस आदमी पर डाल दिए जाएँगे, फिर उसे जहन्नम में झोंक दिया जाएगा।" (हदीस : मुस्लिम)

क़ुरआन की बहुत-सी आयतों और हदीसों में से ये कुछ आयतें और हदीसें हैं, जिनमें यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि दीन में आम

इनसानों और ख़ास तौर से ईमानवालों के हक़ और अधिकार क्या हैं और उनकी कितनी अहमियत है?

हक़ीक़त यह है कि दीनदारी का यह तसव्वुर बिलकुल ग़लत है कि इनसान नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात का तो एहतिमाम करे, मगर लोगों के अधिकार भूलकर उनपर ज़ुल्म करने लगे। दीनदारी तो यह है कि इनसान खुदा और उसके बन्दों, दोनों के हक़ अदा करे और इस सिलसिले में किसी भी तरह की कोताही न करे।

काबा अल्लाह की इबादत ही का नहीं, बल्कि बन्दों के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त का भी मरकज़ है। इनसान का बुनियादी हक़ है कि वह अम्न-सुकून से रहे और कोई किसी पर हाथ न डाले। काबा ने शुरू ही से इनसानों को यह नेमत अता की है। हरम की हदों में किसी इनसान पर हाथ नहीं उठाया जा सकता। क़ुरआन में अल्लाह ने काबा की इस ख़ूबी की तरफ़ जगह-जगह इशारा किया है—

> "और याद करो यह बात कि हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए मरकज़ और अम्न की जगह बनाया।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-125)

फिर काबा और हज व उमरे की वजह से चार महीनों (ज़ी-क़ादा, ज़िल-हिज्जा, मुहर्रम और रजब) में जंग करना नाजाइज़ ठहरा दिया। क़ुरआन में यह बात कितने ज़ोर देकर कही गई है—

> "महीनों की गिनती जब से अल्लाह ने आसमान और ज़मीन को पैदा किया है, अल्लाह की नज़र में बारह है, जिनमें चार महीने मुहतरम (आदर के) हैं (इनमें जंग जाइज़ नहीं)। यही ठीक दीन है, तो तुम इन महीनों में (जंग करके) अपने ऊपर ज़ुल्म न करो।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-36)

वाज़ेह है कि काबा और हज व उमरे की इन ख़ूबियों के होते हुए इस बात की क्या गुंजाइश रहती है कि इनसान हज करने लोगों के हक़ मारकर जाए, या हज के सफ़र में लोगों पर ज़ुल्म व ज़्यादती करे। जिस सफ़र में जानवरों का शिकार और जूँ तक मारना हराम हो उसमें इनसानों पर ज़्यादती

करना कैसे जाइज़ हो सकता है। यूँ तो ज़ुल्म-ज़्यादती दीन की बुनियादी तालीमात के ख़िलाफ़ है और इसकी बुराई भी वाज़ेह है, लेकिन हज में यह बुराई संगीन बन जाती है। इसलिए खुले लफ़्ज़ों में इसको हराम ठहराया गया। क़ुरआन में है–

> "हज के महीने जाने-पहचाने हैं, तो जो कोई इन महीनों में हज करने का इरादा कर ले तो उसके लिए न कोई शहवानी (कामवासना-सम्बन्धी) बात करना जाइज़ है, न और कोई गुनाह और न लड़ाई-झगड़ा।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की हदीस इसे और वाज़ेह करती है–

> "उसामा-बिन-शुरैक (रज़ि॰) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथ हज करने निकला, लोग आप (सल्ल॰) के पास (मसले पूछने) आते थे। कहनेवाले कहते, मैंने तवाफ़ से पहले सई कर ली या फ़ुलाँ चीज़ बाद में की या फ़ुलाँ चीज़ पहले कर दी। आप (सल्ल॰) फ़रमाते, कोई हरज नहीं, हाँ जिसने किसी मुसलमान पर ज़ुल्म करके उसको रुसवा किया वह ज़रूर गुनहगार और हलाक हो गया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इस हदीस से मालूम हुआ कि हज के सिलसिले की छोटी-छोटी ग़लतियाँ माफ़ हो सकती हैं इस शर्त के साथ कि हाजी किसी मुसलमान का हक़ न मारे। इसके बजाय जिस आदमी ने किसी मुसलमान को सताया और उसे रुसवा किया, उसकी मेहनत अकारत गई और उसका हज बरबाद हो गया।

नबी (सल्ल॰) ने अपने आख़िरी हज (हज्जतुल-वदाअ) के मौक़े पर मुसलमानों के बड़े मजमे (जन सभा) को मुख़ातब करते हुए उनको दीन की बुनियादी और अहम तालीमात की वसीयत और तलक़ीन की थी। आपका यह ख़ुतबा बड़ा अहम है। इस ख़ुतबे का बड़ा हिस्सा बन्दों के हक़ और अधिकारों से सम्बन्धित है। यह ख़ुतबा कुछ बड़ा है, हम इसका एक बड़ा हिस्सा आपके सामने रखते हैं। आप इसे अदब और एहतिराम के साथ पढ़ें और इसका हक़ अदा करने की फ़िक्र करें–

"हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने बयान किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने क़ुरबानी के दिन ख़ुतबा दिया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, ज़माना घूमकर उसी हालत पर आ गया जो आसमान और ज़मीन की बनावट के दिन थी। साल बारह महीने का होता है, जिनमें से चार मोहतरम (आदर के) महीने हैं, तीन लगातार— ज़ी-क़ादा, ज़िल-हिज्जा और मुहर्रम और चौथा रजब जो जुमादल-ऊला और शाबान के बीच होता है। फिर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, यह कौन-सा महीना है? हमने कहा, अल्लाह और उसके रसूल ज़्यादा जानते हैं। आप (सल्ल॰) चुप हो गए; यहाँ तक कि हमें यक़ीन हो गया कि आप (सल्ल॰) इस महीने का नाम कुछ और रखेंगे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, क्या यह ज़िल-हिज्जा नहीं है? हमने कहा, हाँ! फिर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, कौन-सा शहर है? हमने कहा, अल्लाह और उसके रसूल को ज़्यादा जानकारी है। आप (सल्ल॰) ख़ामोश हो गए। फिर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, क्या यह बलदा (मक्का) नहीं है? हमने कहा, हाँ! फिर आप (सल्ल॰) ने पूछा, यह कौन-सा दिन है? हमने कहा, अल्लाह और उसके रसूल को ज़्यादा मालूम है। आप (सल्ल॰) ख़ामोश हो गए, यहाँ तक कि हमने समझा कि आप (सल्ल॰) इस दिन का कोई और नाम रखेंगे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, क्या यह यौमुन्नहर (क़ुरबानी का दिन) नहीं है? हमने कहा, हाँ! आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, तुम सब मुसलमानों की जान, माल, इज़्ज़त, आबरू तुम्हारे लिए उसी तरह मोहतरम हैं, जिस तरह यह दिन इस नगर और इस महीने में मोहतरम (आदर के लायक़) है। ऐ मुसलमानो! तुम सब अपने मालिक और पालनहार के सामने हाज़िर होगे तो वह तुमसे तुम्हारे आमाल (कर्मों) के बारे में पूछताछ करेगा। होशियार! मेरे बाद गुमराह (या काफ़िर) न हो जाना कि तुम एक-दूसरे की गर्दन उड़ाने लगो। हाँ, ऐ लोगो!

. क्या मैंने तुम तक एक ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचा दिया? सहाबा (रज़ि०) ने कहा, हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, ऐ अल्लाह! तू भी गवाह रह! (फिर आपने फ़रमाया) जो मौजूद हैं वे उन लोगों तक जो यहाँ नहीं हैं (यह पैग़ाम) पहुँचा दें। क्योंकि अकसर पैग़ाम (सन्देश) सुननेवालों से ज़्यादा वे लोग पैग़ाम की हिफ़ाज़त करते हैं जिन तक पैग़ाम पहुँचाया जाता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

कितना ज़ोर, कितनी ताकीद और कितना असर है इस ख़ुतबे में! और इससे बन्दों के हक़ और अधिकारों की अहमियत कितनी ज़्यादा उभरकर सामने आती है! कुछ रिवायतों में है कि इस मौक़े पर आप (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया—

"औरतों (से सुलूक) के बारे में अल्लाह से डरो, क्योंकि तुमने उन्हें (अपने निकाह में) अल्लाह की दी हुई अमान के ज़रिए से लिया है और अल्लाह के हुक्म के ज़रिए से वे तुम्हारे लिए हलाल हुई हैं। तुम्हारा उनपर यह हक़ है कि वे तुम्हारे घरों में ऐसे लोगों को न आने दें जो तुम्हें नापसन्द हों, अगर वे ऐसा करें तो उन्हें मारो, ऐसी मार जो सख़्त न हो।[1] और उनका तुमपर हक़ यह है कि खाना, कपड़ा भले तरीक़े से दो। बेशक मैं तुममें एक ऐसी चीज़ छोड़े जा रहा हूँ जिसे तुम मज़बूती से पकड़ लो तो कभी गुमराह न हो, वह अल्लाह की किताब (क़ुरआन) है।" (हदीसःमुस्लिम)

---

(1) कभी बीवी ऐसी हरकतें करने लगती है और ऐसी बुराइयों में लिप्त हो जाती है कि जिनकी वजह से कोई भी शौहर ऐसी बीवी को बरदाश्त नहीं कर सकता और कोई भी समाज यहाँ तक कि अदालत तक ऐसी बीवी को शौहर से जुदा करने का फ़रमान सुना देती है। इस्लाम चाहता है कि आख़िरी दम तक कोशिश की जाए कि मियाँ-बीवी में जुदाई न हो। अगर बीवी समझाने-बुझाने से ऐसी हरकत छोड़ देने से बाज़ न आए और उम्मीद हो कि सख़्ती करने से वह उस हरकत से रुक सकती है, तो बड़े मक़सद को हासिल करने के लिए उसपर सख़्ती करने की इजाज़त दी गई है। मगर इस शर्त के साथ कि कोई भी सख़्ती या चोट चेहरे पर नहीं होनी चाहिए। (अनुवादक)

कितनी अहम हैं नबी (सल्ल०) की ये हिदायतें जो आप (सल्ल०) ने अपने आख़िरी हज के मौक़े पर अपनी उम्मत को दीं। सही बात यह है कि हज का मौक़ा बन्दों के हक़ की अदायगी के लिहाज़ से बड़े अहम इमतिहान का मौक़ा होता है। सफ़र की मशक़्क़तें, इनसानों की बेपनाह भीड़, अजनबी, अनजान और अलग-अलग मिज़ाज़ के लोगों का साथ, ये चीज़ें आपसी ताल्लुक़ात को बिगाड़ने के लिए काफ़ी हैं अगर लोगों में बन्दों के हक़ की अहमियत का एहसास और ख़ुदा का डर न हो। लेकिन अगर इन हालात में लोग एक-दूसरे के हक़ों को पहचानें और मुहब्बत और ख़िदमत के जज़्बे के साथ ये दिन बिता दें तो न सिर्फ़ उनके हज के क़बूल होने की उम्मीद बढ़ जाती है, बल्कि उनकी यह तरबियत भी होती है कि वे आम हालात में एक दूसरे के हुक़ूक़ अदा करें और ज़ुल्म व नाइनसाफ़ी के हर तरीक़े से बचें और यही तरबियत हज का मक़सद भी है।

दीन को क़ायम करना और दीन पर जमे रहना

अल्लाह तआला ने दुनिया में अपने रसूलों को सिर्फ़ इसलिए भेजा कि वे दुनियावालों को अल्लाह के दीन की तरफ़ बुलाएँ और अल्लाह के दीन को पूरे-के-पूरे क़ायम और ग़ालिब करने की जिद्दो-जुहद करें और इस दावत और इस जिद्दो-जुहद में अपनी पूरी ज़िन्दगी, अपनी तमाम सलाहियतें और ताक़तें लगा दें और अपनी जान और माल की बाज़ी लगा दें। तमाम नबियों की ज़िन्दगी का यही मक़सद होता है और इसी मक़सद को पूरा करने में वे पूरे तौर से लगे रहते थे। क़ुरआन में है—

> "(ये रसूल वे हैं) जो अल्लाह के पैग़ाम (इनसानों तक) पहुँचाते हैं और उससे डरते हैं, और अल्लाह के सिवा किसी से नहीं डरते। और अल्लाह हिसाब लेने के लिए बिलकुल काफ़ी है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-39)

एक और जगह पर है—

> "वह अल्लाह ही है जिसने अपने रसूल को हिदायत और सच्चे दीन के साथ भेजा, ताकि उसे तमाम दीनों पर ग़ालिब कर दे,

चाहे मुशरिकों को कितना ही नापसन्द हो।''

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-33)

फिर जो लोग अल्लाह के रसूलों पर ईमान लाते हैं, उनकी ज़िम्मेदारी जहाँ यह होती है कि वे अल्लाह की बन्दगी और इताअत में ख़ुद को दे दें, वहीं उनकी बड़ी ज़िम्मेदारी यह भी है कि वे दूसरे इनसानों तक अल्लाह के दीन को पहुँचाएँ, अपनी कथनी और करनी से हक़ की गवाही दें और दुनिया में अल्लाह के दीन को क़ायम और ग़ालिब करने की भरपूर कोशिश करें। क़ुरआन में है—

> ''ऐ ईमानवालो! झुको और सजदा करो, अपने रब की बन्दगी करो और नेक काम करो, ताकि तुम कामयाब हो। और अल्लाह की राह में जिद्दो-जुहद करो जैसा कि उस (की राह) में जिद्दो-जुहद करने का हक़ है। उसी ने तुम्हें चुन लिया है और दीन के सिलसिले में तुमपर कोई तंगी नहीं रखी है, यह तुम्हारे बाप इबराहीम का तरीक़ा है, उसी ने तुम्हारा नाम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) रखा है, इससे पहले और क़ुरआन में भी तुम्हारा नाम मुस्लिम है, ताकि रसूल तुमपर (हक़ के) गवाह हों, और तुम (सारे) इनसानों पर (हक़ के) गवाह बनो।''

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयतें-77, 78)

'अल्लाह की राह में जिद्दो-जुहद करो' यानी अल्लाह की रिज़ा के लिए उसके दीन को क़ायम और ग़ालिब करने की भरपूर कोशिश करो। 'रसूल तुमपर (हक़ के) गवाह हों और तुम (तमाम) इनसानों पर (हक़ के) गवाह बनो।' यानी यह काम तो रसूल का है कि वह अपनी कथनी और करनी से तुम्हारे सामने दीने-हक़ का पूरा-पूरा नमूना पेश कर दे और इसके बाद यह काम तुम्हारा है कि तुम दुनिया के दूसरे इनसानों के सामने अपनी कथनी और करनी से दीन का सही नमूना पेश करो।

एक मोमिन के ईमान का इम्तिहान इसी में है कि अल्लाह के दीन पर अमल करने, उसके दीन की दावत देने और उसे क़ायम और ग़ालिब करने

के बारे में अपने-आपको और अपने साधनों और ज़रिओं को लगाता है या नहीं और तकलीफ़ों और मुसीबतों को झेलकर इस रास्ते की आज़माइशों में मज़बूती से जमा रहता है या नहीं? क़ुरआन में है—

> "क्या लोगों ने यह समझ रखा है कि वे बस इतना कहने से छोड़ दिए जाएँगे कि 'हम ईमान ले आए' और उन्हें आज़माइशों में डाला न जाएगा? यक़ीनन हमने उनसे पहले के लोगों को आज़माया है, तो अल्लाह ज़रूर यह जानकर रहेगा कि कौन लोग (अपने ईमान के दावे में) सच्चे हैं और यह भी मालूम करके रहेगा कि कौन लोग (अपने दावे में) झूठे हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-29 अन्‌कबूत, आयतें-1-3)

यानी जो आदमी हक़ के रास्ते की आज़माइशों में साबित क़दम रहे, उसके ईमान का दावा सच्चा है। क़ुरआन में एक और जगह है—

> "जो लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं, वे अपने माल और अपनी जानों के साथ जिहाद न करने की तुमसे इजाज़त नहीं चाहते। और अल्लाह उन लोगों को ख़ूब जानता है जो डरनेवाले हैं। जिहाद न करने की इजाज़त सिर्फ़ वही लोग चाहते हैं जिनका न अल्लाह पर ईमान है और न आख़िरत के पर, उनके दिल शक में पड़े हैं, तो वे अपने शक ही में डाँवा-डोल हो रहे हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयतें-44, 45)

यानी दीने-हक़ को क़ायम और ग़ालिब करने की जिद्दो-जुहद और अल्लाह के रास्ते में जान-माल की बाज़ी लगाने से वही लोग कतराते हैं जो मुनाफ़िक़ हैं, जिनके दिलों में ईमान के बजाय शक की बीमारी भरी हुई है और जिन्हें न तो अल्लाह के वादों और उसकी मदद पर भरोसा है और न आख़िरत की हमेशा की नेमतों का यक़ीन। वरना जिसे इस बात का यक़ीन हो कि अल्लाह उसका मालिक और आक़ा है और उसकी ख़ुशी के लिए अपना सबकुछ लगा देना ही उसकी ज़िम्मेदारी और उसकी ज़िन्दगी का मक़सद है, जिसे यक़ीन हो कि अल्लाह की मदद और रहमत सिर्फ़ उन लोगों

के साथ होती है जो उसकी ख़ुशी के लिए हक़ के रास्ते की तकलीफ़ों में साबित क़दम रहते हैं और उसके दीन को दुनिया में क़ायम और ग़ालिब करने की जान तोड़ कोशिश करते हैं और जिसे इस बात का यक़ीन हो कि दुनिया के ख़त्म हो जानेवाले आराम और मुसीबतें आख़िरत की हमेशा बाक़ी रहनेवाली नेमतों और सदा के अज़ाब के मुक़ाबले में छोटी और मामूली हैं और परवाह करने के लायक़ नहीं हैं, उससे यह कैसे मुमकिन है कि वह देखे कि ख़ुदा का दीन मग़लूब (पराजित) और मक़हूर (पीड़ित) है और वह सुख व चैन की नींद सोता रहे। या दीन को क़ायम और ग़ालिब करने की जिद्दो-जुहद हो रही हो और वह दुनिया के थोड़े-से दिनों की मुसीबतों और परेशानियों से डरकर घर में घुसा बैठा रहे।

इबादत का एक अहम पहलू यह है कि उससे इनसान के अन्दर ख़ुदा की बन्दगी व फ़रमाँबरदारी का जज़्बा, दीने-हक़ की दावत और उसको क़ायम करने का मज़बूत इरादा और सब्र करने व मज़बूती से जमने की ख़ूबी पैदा होती है। दूसरी इबादतों से हटकर, हम यहाँ मुख़्तसर तौर पर सिर्फ़ यह बताएँगे कि हज से ये नतीजे किस तरह और किस हद तक हासिल होते हैं?

इनसान जैसे ही हज करने का फ़ैसला करता है, तो उसके अन्दर हज के ख़याल, अल्लाह के दरबार में हाज़िरी का तसव्वुर और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की याद से दीनदारी की एक लहर, नेक कामों के करने की एक उमंग और अपनी कोताहियों और कमियों के सुधार का एक जज़्बा हिलोरें मारने लगता है और जैसे-जैसे सफ़र की तारीख़ क़रीब आती जाती है यह अन्दुरूनी जज़्बा और ज़्यादा तेज़ होता जाता है, यहाँ तक कि वह दिन आ जाता है, जब हज का इरादा करनेवाला इनसान दुनिया की सभी दिलचस्पियों को पीछे छोड़कर और फ़ायदों और आराम व सुख से मुँह मोड़कर पाकीज़ा और नेक और मज़बूत इरादों के साथ अल्लाह की राह में निकल खड़ा होता है। यह सफ़र और दुनिया से यह अलगाव ख़ुद ही इनसान को अल्लाह से क़रीब कर देनेवाला है। लेकिन उसका सफ़र अकेला नहीं होता। इसी जज़्बे, इसी धुन, इसी वलवले और इसी जोश में डूबे लोग रास्ते-भर काफ़िलों की शक्ल में उससे मिलते और उसके हमसफ़र होते जाते हैं और इस तरह एक

ख़ालिस दीनी और हौसला से भरा माहौल बनता चला जाता है। इस सफ़र में हाजी सिर्फ़ इन कामों में लगा होता है— ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्लाह को याद करना, दिन-रात इबादत में लगे रहना और ज़्यादा-से-ज़्यादा तौबा व इसतिग़फ़ार करना और इनमें से ऐसी कौन-सी चीज़ है जो उसकी इसलाह के लिए मुफ़ीद न हो! एहराम बाँधने के बाद तो हाजी दुनिया की लज़्ज़तों से बेपरवाह, दुनिया और उसकी चीज़ों से बेख़बर, अपने मालिक और मुहसिन की रिज़ा और ख़ुशी की तलाश में डूबा हुआ, अपने आक़ा और परवरदिगार की पुकार पर मुहब्बत के साथ लब्बैक कहता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है और हरम की ज़मीन में पहुँच जाने के बाद तो अल्लाह की इताअत व बन्दगी करने, उसके हुक्म पर बेझिझक तकलीफ़ सहने, उससे दिन-रात लौ लगाने और उसके आगे पूरी तरह झुके और गिड़गिड़ाते रहने के सिवा उसका और कोई काम नहीं रह जाता। यदि इनसान के अन्दर का एहसास मर न गया हो तो यह माहौल और यह प्रोग्राम दीन से मुहब्बत व लगाव और दीन की ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की फ़िक्र पैदा करने के लिए काफ़ी है।

काबा, सफ़ा व मरवा और मिना व अरफ़ात जैसी जगहों और हज के मनासिक (प्रथाओं) के तहत काबा को सबसे पहले तामीर करनेवाले और हज के लिए सबसे पहले बुलानेवाले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की याद आ जाना बिलकुल फ़ितरी बात है। अल्लाह के इस प्यारे बन्दे ने कितने इख़लास और यकसूई के साथ अल्लाह की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी की, कितने हौसले और कितनी मज़बूती और लगन के साथ लोगों को दीने-हक़ की तरफ़ बुलाया, हक़ के रास्ते की परेशानियों और तकलीफ़ों का किस हँसी-ख़ुशी के साथ इसतिक़बाल किया, दीन की दावत फैलाने के लिए क्या-क्या तदबीरें अपनाईं और किस तरह अल्लाह की बन्दगी और उसके दीन की दावत का एक मरकज़ (केन्द्र) बनाकर ऐसी रेगिस्तानी ज़मीन में जहाँ न पानी था न हरियाली, अपनी औलाद को ला बसाया। यह बात मुमकिन नहीं कि किसी आदमी को हज और काबा के इतिहास से थोड़ी-बहुत वाक़फ़ियत भी हो और फिर उसके दिलो-दिमाग़ में ये यादें बार-बार न उभरें, ये पाकीज़ा और हौसला

बढ़ानेवाले मंज़र (दृश्य) उसके तसव्वुर की आँखों में बार-बार न फिरें और दीन की सच्चे दिल से पैरवी और हक़ के कलिमे को बुलन्द करने का जज़्बा उसके अन्दर पैदा न हो।

मक्का और मदीना पहुँचकर नामुमकिन है कि एक मुसलमान को अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के पाक साथियों की याद बार-बार न आए और नबी (सल्ल॰) तथा ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के दौर का नक्शा नज़रों के सामने न फिर जाए। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के प्यारे सहाबा ने किस ज़ौक-शौक़ से अल्लाह की इबादत की, कितने जोश और हौसले के साथ अल्लाह के हुक्मों का पालन किया, दीन की पैरवी और उसकी दावत व इक़ामत के लिए क्या-क्या तकलीफ़े सहीं, अल्लाह की ख़ुशी के लिए क्या-क्या छोड़ा और किन-किन से ताल्लुक़ तोड़े, अपने से कई गुना ज़्यादा फ़ौजों से किस प्रकार टक्कर ली, हक़ के लिए ख़ुद अपने ही घर-ख़ानदान के लोगों का किस तरह मुक़ाबला किया, अल्लाह के कलिमे को बंलन्द करने के लिए बेसरो-सामानी की हालत में सिर्फ़ अल्लाह के भरोसे पर किस-किस तरह जिद्दो-जुहद की। मस्जिदे-हराम (काबा), मस्जिदे-नबवी, मस्जिदे-क़ुबा, मक्का और मदीना का एक-एक चप्पा, ग़ारे-हिरा, ग़ारे-सौर, बद्र, उहुद, ताइफ़, हुदैबिया मतलब यह है कि हिजाज़ की ज़मीन की एक-एक जगह दीन की पैरवी, दीन की दावत और अल्लाह के कलिमे को बलन्द करने की बेशुमार दास्तानें अपने दामन में छिपाए हुए हैं। इन जगहों से इनसान गुज़रे और उसे यह सब कुछ याद न आए, उसके अन्दर ख़ुदा व रसूल की इताअत का जज़्बा, दावते-दीन का वलवला और अल्लाह के कलिमे को बलन्द करने का हौसला बेदार न हो, आख़िर यह कैसे मुमकिन है?

सबसे आख़िरी बात यह है कि हज अल्लाह की बड़ी अहम इबादत होने के साथ-साथ इस्लामी तहरीक का आलमी सालाना इजतिमा (अंतर्राष्ट्रीय वार्षिक सम्मेलन) भी है। इस हक़ीक़त को मुख़्तसर तौर पर इस तरह समझिए कि इस्लाम कोई क़ौमी या मुल्की धर्म नहीं है, बल्कि यह सारे देशों का (अंतर्राष्ट्रीय) और सारे इनसानों का दीन और आलमी इसलाही

(सुधारवादी) व इनक़िलाबी तहरीक (आन्दोलन) है। यह तहरीक इनसानी ज़िन्दगी के इनफ़िरादी और इजतिमाई तमाम पहलुओं को अल्लाह की रिज़ा और उसके दीन के मुताबिक़ बदल डालना और पूरी इनसानियत को अपने दायरे में समेट लेना चाहती है। इस दीन और इस तहरीक को माननेवाले और लेकर चलनेवाले शख़्स को 'मुस्लिम' कहते हैं। चाहे वह किसी भी क़ौम का व्यक्ति या किसी भी देश का रहनेवाला हो, ऐसे तमाम मुसलमान मिलकर एक संगठन, एक जमाअत और एक उम्मत बनाते हैं। इस उम्मत का नाम 'उम्मते-मुस्लिमा' (मुस्लिम समुदाय) और इस जमाअत का नाम 'हिज़्बुल्लाह' (अल्लाह की पार्टी) है। इस दीन का और इस तहरीक का एक मरकज़ है और वह काबा है। हज इस दीन का एक अहम रुक्न और इस तहरीक का आलमी सालाना इजतिमा है। यह इजतिमा इसलिए है कि हर साल दुनिया के कोने-कोने से इस उम्मते-मुस्लिमा के लोग आएँ और अपने मर्कज़ से नई दीनी रूह, नए इनक़िलाबी मनसूबे (योजनाएँ) और नई इसलाही (सुधारवादी) स्कीमें लेकर अपने-अपने देशों को वापस लौटें और उम्मत की इसलाह के साथ-साथ इस्लामी दावत को तेज़ करने और इस्लामी तहरीक को पूरी दुनिया में कामयाब बनाने के लिए अपना-अपना रोल अदा करें।

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰), नबी (सल्ल॰) और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ि॰) के ज़माने तक हज की यह हैसियत पूरी तरह बाक़ी थी। उस मुबारक ज़माने के बाद जब ज़ालिम और मतलबी बादशाह उम्मत के हाकिम बन बैठे, मुसलमानों में दीनी बेहिसी और बिखराव फैला तो हज के ये फ़ायदे धीरे-धीरे ख़त्म हो गए। फिर भी यदि हिजाज़ की हुकूमत, मुसलमानों की दीनी और मिल्ली जमाअतें और दीनदार लोग अपनी ज़िम्मेदारियाँ महसूस करें तो हज का यह फ़ायदा किसी-न-किसी हद तक दोबारा मिल सकता है और हज के ज़रिए से मुसलमानों की इसलाह, ग़ैर-मुस्लिमों में दीन की दावत और दुनिया में तहरीके-इस्लामी का काम काफ़ी आगे बढ़ सकता है।

अल्लाह के दीन की पैरवी और दुनिया में उसकी दावत व इक़ामत बड़ा मुश्किल काम है। इस काम को करने के लिए ईमान व यक़ीन, जोश व हौसला और हिकमत व तदब्बुर (दूरदर्शिता) के साथ सब्र और इसतिक़ामत

(मज़बूती) और ईसार (त्याग) व क़ुरबानी की बेहद ज़रूरत है। हज से इनसान के अन्दर सब्र व इसतिक़ामत और ईसार व क़ुरबानी की ख़ूबियाँ भी पलती और बढ़ती हैं। अल्लाह की रिज़ा के लिए लम्बे वक़्त तक अपने घरवालों व रिश्तेदारों से दूर रहना, लम्बे सफ़र की तकलीफ़ें बरदाश्त करना, अजनबी मक़ामात की परेशानियाँ झेलना और अन्य लोगों के ज़रिए से तकलीफ़ पहुँचने पर सब्र करना, अल्लाह की ख़ुशी के लिए अपने माल और जायदाद को बिना झिझक क़ुरबान करना और मनासिके-हज की अदायगी के बारे में मुजाहिदों और सिपाहियों जैसी ज़िन्दगी गुज़ारना, ये सब बातें शुऊर और सूझ-बूझ के साथ हों तो ख़ुदा और उसके दीन के लिए ईसार व क़ुरबानी और सब्र व इसतिक़ामत की ख़ूबियाँ पैदा करने और बढ़ाने के लिए एक अच्छे प्रोग्राम की हैसियत रखती हैं।

मुहब्बत और एहसान

मोमिन के ईमान का एक बुनियादी तक़ाज़ा यह भी है कि वह अल्लाह से सबसे ज़्यादा मुहब्बत करे। किसी हस्ती से मुहब्बत या तो उसके हुस्न व जमाल की वजह से होती है या उसकी ख़ूबियों की वजह से या फिर उसके एहसानों और इनामों की बुनियाद पर। इस कायनात में बेशुमार हसीन व जमील चीज़ें हैं और इनसान उनके हुस्न व जमाल (रूप एवं सौन्दर्य) की वजह से उन्हें पसन्द करता है और उनसे मुहब्बत रखता है। लेकिन यह सारा हुस्न व जमाल कहाँ से आया? यह अल्लाह ही का दिया हुआ और उसी का पैदा किया हुआ है। जो हुस्न और जमाल का सरचश्मा (मूल स्रोत) है, इसी तरह कमालात (गुण और विशेषताएँ) सारे-के-सारे अल्लाह ही के लिए हैं।

> "और अल्लाह ही के लिए हैं अच्छे नाम (गुण)।
>
> (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-180)

अल्लाह के सिवा किसी में कोई कमाल या ख़ूबी है तो वह अल्लाह ही के असमा-ए-हुस्ना (अच्छे नामों) का अक्स और प्रतिच्छाया है। इसी तरह एहसान और इनाम भी सब-के-सब अल्लाह ही की तरफ़ से हैं, क्योंकि जिसको जो कुछ मिलता है अल्लाह ही की तरफ़ से और उसी की मरज़ी से मिलता है, और इनसानों पर तो उसकी इनायतें और मेहरबानियाँ अनगिनत

हैं।

"और अगर तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो तो तुम उन्हें गिन नहीं सकते।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-34)

मतलब यह है कि जिस पहलू से भी देखिए, अल्लाह सबसे ज़्यादा मुहब्बत और शुक्रगुज़ारी का हक़दार नज़र आएगा और इनसान को अल्लाह की सिफ़ाते-कमाल और उसके एहसानों व इनामों का जितना एहसास होगा, उसे अल्लाह से उतनी ही ज़्यादा मुहब्बत होगी। क़ुरआन में है–

"और जो ईमान रखते हैं वे तो सबसे बढ़कर मुहब्बत अल्लाह ही से रखते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-165)

हक़ीक़त यह है कि अल्लाह की जो बन्दगी और इताअत, उसके लिए जो सिपुर्दगी व हवालगी और इख़्लास व यकसूई, दीन के लिए जो सरगर्म जिद्दो-जुहद और सब्र व इसतिक़ामत और हक़ के लिए जो जाँनिसारी व सरफ़रोशी इस्लाम चाहता है वह ख़ुदा से शदीद मुहब्बत और दिल की गहरी लगन के बिना मुमकिन नहीं क़ुरआन में है–

"ऐ ईमानवालो! तुममें से जो कोई अपने दीन (की ज़िम्मेदारियों को पूरा करने) से मुँह मोड़ेगा, तो जल्द अल्लाह ऐसे लोगों को (मैदान में) ले आएगा जिनसे उसे मुहब्बत होगी और जो उससे मुहब्बत रखते होंगे, जो ईमानवालों के लिए नर्म होंगे और इनकार करनेवालों के लिए सख़्त, जो अल्लाह की राह में जिहाद करेंगे और किसी मलामत करनेवाले की मलामत से न डरेंगे।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-54)

इस आयत से दो बातें मालूम होती हैं, एक तो यह कि हक़ पर जो इसतिक़ामत (जमने या क़ायम रहने), हक़वालों से जो अच्छा ताल्लुक़ और अल्लाह के दीन को क़ायम व ग़ालिब करने के लिए जो लगातार जिद्दो-जुहद ख़ुदा चाहता है उसे वही लोग पूरा कर सकते हैं जिन्हें ख़ुदा से मुहब्बत हो, और दूसरी बात यह कि ख़ुदा से मुहब्बत होने का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि इनसान हक़वालों के साथ नर्म और कुफ़्रवालों के लिए सख़्त हो और

ख़ुदा के दीन को क़ायम व ग़ालिब करने के लिए लगातार कोशिश करनेवाला हो और इस मामले में उसे न किसी की परवाह हो, न किसी की मलामत का डर। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "तीन बातें ऐसी हैं कि वे जिस किसी में होंगी वह उनकी वजह से ईमान की मिठास पा लेगा, एक यह कि उसे अल्लाह और उसका रसूल हर चीज़ से ज़्यादा प्यारे हों, दूसरी यह कि वह जिस बन्दे से भी मुहब्बत करे सिर्फ़ अल्लाह के लिए करे और तीसरी यह कि जिसे कुफ्र की हालत में लौट जाना— जबकि अल्लाह ने उसे कुफ्र से नजात दे दी— ऐसा ही नागवार हो जैसा कि आग में डाला जाना।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई)

आख़िरत में अल्लाह की बेशुमार नवाजिशें (कृपाएँ) ऐसे ही लोगों के लिए हैं जो मुहब्बत और शौक़ के साथ उसकी बन्दगी और फ़रमाँबरदारी करते हैं—

> "हाँ, जो शख़्स अपने-आपको अल्लाह के आगे झुका दे, और वह मोहसिन (बेहतरीन ढंग से काम करनेवाला) भी हो तो ऐसे शख़्स को अपने रब के पास (ज़रूर) अज्र मिलेगा और, ऐसे लोगों को न कोई डर होगा और न कोई ग़म।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-112)

एहसान के मानी है, अल्लाह की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी हुस्न और ख़ूबी के साथ करना, दिल और जान से उसकी रिज़ा पर चलना, उसकी ख़ुशी के लिए अपना सबकुछ निछावर करने को तैयार रहना—और जिस आदमी में ये ख़ूबियाँ हों, क़ुरआन की नज़र में वह मुहसिन है।

अल्लाह पर ईमान और उसकी अच्छी सिफ़ात का एहसास इस मुहब्बत को जन्म देता है और नमाज़, क़ुरआन की तिलावत, ज़िक्र, दुआ और अल्लाह की इताअत से यह मुहब्बत बढ़ती और परवान चढ़ती है। लेकिन हज अल्लाह की मुहब्बत का बड़ा मज़हर (प्रतीक) और मुहब्बत पैदा करने का एक बड़ा ज़रिआ है। एक आशिक़ की तरह हाजी तमाम मशग़ूलियात

और रिश्ते-नातों को छोड़कर अपने महबूब पालनहार की पुकार पर दीवानों की तरह लब्बैक कहता हुआ हाज़िर होता है। सफ़र की तकलीफ़ें सहता है, लेकिन तमाम मुश्किलों का मुक़ाबला करते हुए हबीब की चौख़ट पर ही पहुँचकर साँस लेता है। इस दौरान में उसे न अपने आराम की चिन्ता और फ़िक्र होती है न शरीर की सफ़ाई-सुथराई और सज-धज का ख़याल, बस एक ही फ़िक्र होती है और वह यह कि जल्दी-से-जल्दी हबीब की चौखट पर पहुँच जाए। उसका हर वक़्त का काम अपने रब का ध्यान और उसकी ख़ुशनूदी की तलाश होता है। हबीब की चौख़ट (काबा) पर पहुँचकर उसकी ज़ियारत (दर्शन) से अपनी आँखें ठंडी करता है। फिर वह दीवानों की तरह उसके घर का तवाफ़ करता है और मानो ज़ाहिर और बातिन से हबीब और उसकी चौखट पर क़ुरबान होता है। मौक़ा मिलने पर आस्ताने (हजरे-असवद) को चूमता है। हबीब के घर पहुँचकर उससे ज़्यादा-से-ज़्यादा दुआएँ, प्रार्थनाएँ और चुपके-चुपके बातें करता है, उसके सामने अपनी नियाज़मन्दियों का इज़हार करता है, रोते और गिड़गिड़ाते हुए उसके आगे सजदे करता है और उससे अपनी ग़लतियों और गुनाहों के लिए माफ़ी चाहता है। फिर यह साबित करने के लिए कि वह हबीब के एक इशारे पर अपना सबकुछ क़ुरबान कर देने को तैयार है, क़ुरबानी करता है, उसके आसपास ऐसे ही लोगों की भीड़ होती है जो उसकी तरह अल्लाह की मुहब्बत में डूबे हुए होते हैं और वह इस मुहब्बत से भरे माहौल में खो जाता है—हज के मनासिक अगर शुऊर और ख़ुलूस के साथ अदा किए जाएँ तो हक़ीक़त यह है कि वे अल्लाह की मुहब्बत पैदा करने का बहुत बड़ा ज़रिआ हैं, यही वजह है कि सूरा-2 बक़रा में हज का ज़िक्र ख़त्म करने के बाद फ़रमाया गया—

> "और कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह की रिज़ा की चाह के लिए अपने-आपको (उसके हाथ) बेच देते हैं और अल्लाह ऐसे बन्दों पर बहुत मेहरबान है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-207)

सूरा-22 हज में भी हज और क़ुरबानी के ज़िक्र का ख़ातिमा इन अलफ़ाज़ पर होता है—

> "अल्लाह को (तुम्हारी) क़ुरबानियों का गोश्त और ख़ून हरगिज़

नहीं पहुँचता, उसे तो तुम्हारा तक़वा पहुँचता है। इसी तरह अल्लाह ने उन जानवरों को तुम्हारे लिए काम में लगा रखा है ताकि तुम अल्लाह की हिदायत बख़्शी (की शुक्रगुज़ारी के तौर) पर उसकी बड़ाई करो, और (ऐ नबी!) मुहसिनों को (दुनिया और आख़िरत की) ख़ुशख़बरी दे दीजिए।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-37)

मानो हज का सबसे बड़ा मक़सद और उसका उद्देश्य यह है कि इनसान अल्लाह का मुहसिन बन्दा बने। यानी अल्लाह की मुहब्बत में डूबकर अपना सबकुछ उसकी बन्दगी और इताअत और उसके दीन की दावत व इक़ामत में लगा दे।

यह है हज की रूह, उसकी हक़ीक़त और उसका उद्देश्य। आप इन्हें अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लें। आप अपने हज के आमाल में इस रूह और इस मक़सद को जितना याद रखेंगे उतनी ही आपकी मेहनत सफल होगी और उम्मीद है कि उतना ही आपका हज हज्जे-मबरूर बनकर अल्लाह के यहाँ मक़बूल होगा।

अमली तदबीरें

आपके हज में यह रूह कैसे पैदा हो और वे मक़सद कैसे पूरे हों जो हज से मतलूब हैं? इस मक़सद के लिए हम नीचे कुछ अमली तदबीरें लिखते हैं, ताकि इनका एहतिमाम करके आप अपने अन्दर हज की मतलूबा रूह पैदा कर सकें—

नीयत का ख़ालिस होना

सबसे पहली और सबसे अहम बात यह है कि आपका हज सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा और आख़िरत के अज्र के लिए हो। इसके अलावा हज का और कोई मक़सद न हो। क्योंकि अल्लाह के यहाँ सिर्फ़ वही अमल मक़बूल है जो ख़ालिस उसी की रिज़ा के लिए किया गया हो। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "आमाल (की मक़बूलियत) का दारोमदार नीयतों पर है, और इनसान को वही कुछ मिलेगा जिसकी उसने नीयत की होगी, तो जिस आदमी की हिजरत अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ होगी, उसकी हिजरत हक़ीक़त में अल्लाह और उसके रसूल ही की तरफ़ होगी और जिस किसी की हिजरत दुनिया के कुछ फ़ायदे हासिल करने या किसी औरत से शादी करने के लिए होगी तो उसकी हिजरत का फल यही कुछ होगा।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा, मालिक)

इस हदीस से यह बात अच्छी तरह वाज़ेह होती है कि अस्ल चीज़ नीयत है। जो नेक काम अल्लाह की रिज़ा और उसके रसूल की इताअत के लिए हो, वह मक़बूल होगा और उसका अज्र मिलेगा। और जिस काम का मक़सद दुनिया हासिल करना या दिखावा हो, उसका अल्लाह के यहाँ कोई सवाब नहीं है, चाहे हिजरत या उससे भी बड़ा कोई काम हो।

इस बारे में बहुत-सी आयतें और हदीसें हैं। यहाँ हम सिर्फ़ एक हदीस

पेश करते हैं जो इबरत और नसीहत से भरी हुई है। आप भी पढ़ें—

"क़ियामत के दिन (अल्लाह की अदालत से) जिन लोगों के ख़िलाफ़ सबसे पहले फ़ैसला होगा, उनमें से एक आदमी वह होगा जिसने (अल्लाह की राह में) जान दी होगी, उसे (अल्लाह की अदालत में) बुलाया जाएगा। अल्लाह उससे अपनी (बख़्शी हुई) नेमतों का (एक-एक करके) ज़िक्र करेगा, वह उन (नेमतों के मिलने) का इक़रार करेगा, अल्लाह (उससे) पूछेगा कि तुमने इन नेमतों का क्या किया? वह कहेगा कि मैंने तेरी राह में जंग की, यहाँ तक कि (तेरे लिए) जान भी दे दी। अल्लाह फ़रमाएगा, तुम झूठे हो, तुमने इसलिए जंग की कि लोग तुम्हें बहादुर कहें, तो (तुम्हें बहादुर) कहा जा चुका। इसके बाद उसके बारे में हुक्म होगा, उसे मुँह के बल घसीटकर ले जाया जाएगा और जहन्नम में झोंक दिया जाएगा।

और एक आदमी वह होगा जिसने (दीन का) इल्म हासिल किया होगा, (लोगों को) उसकी तालीम दी होगी और क़ुरआन को पढ़ा होगा, उसे (ख़ुदा की अदालत में) पेश किया जाएगा। अल्लाह उससे अपनी नेमतों का (एक-एक करके) ज़िक्र करेगा, वह उन (सब नेमतों के मिलने) का इक़रार करेगा। अल्लाह (उससे) पूछेगा, तुमने इन (नेमतों) का क्या किया? वह कहेगा, मैंने (दीन का) इल्म सीखा, (लोगों को) उसकी तालीम दी और तेरी रिज़ा के लिए क़ुरआन को पढ़ा। अल्लाह फ़रमाएगा, तुम झूठ कहते हो, तुमने इल्म इसलिए सीखा था कि लोग तुम्हें दीन का आलिम कहें, और तुमने क़ुरआन को इसलिए पढ़ा था कि तुम्हें क़ुरआन के इल्म का माहिर कहा जाए, तो (तुम्हें यह सबकुछ) कहा जा चुका। फिर उसके बारे में हुक्म होगा, उसे मुँह के बल घसीटकर ले जाया जाएगा और जहन्नम में झोंक दिया जाएगा।

और एक आदमी वह होगा जिसे अल्लाह ने मालदार बनाया

होगा और उसे हर तरह की दौलत दी होगी, उसे (ख़ुदा की अदालत में) लाया जाएगा। अल्लाह उसे अपनी नेमतें (एक-एक करके) याद दिलाएगा, वह उन (सब नेमतों के मिलने) का इक़रार करेगा, अल्लाह पूछेगा कि तुमने उन नेमतों का क्या किया? वह कहेगा, तुझे जिस-जिस काम में (दौलत) ख़र्च करना पसन्द था, मैंने तेरी रिज़ा के लिए उसी काम में ख़र्च किया। अल्लाह फ़रमाएगा, तुमने झूठ बोला, तुमने (यह सब) इसलिए किया था कि लोग तुम्हें सख़ी (दाता) कहें, तो तुम्हें (यह सबकुछ) कहा जा चुका। तब उस आदमी के बारे में फ़ैसला होगा, उसे मुँह के बल घसीटते हुए ले जाया जाएगा और फिर जहन्नम में झोंक दिया जाएगा।"

(हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, अहमद, इब्ने-हिब्बान)

कितनी इबरत से भरी हुई और दिल देहला देनेवाली है यह हदीस! इनसान के पास तीन तरह के साधन हैं। जिस्मानी (शारीरिक), ज़ेहनी (बौद्धिक), माली (आर्थिक)। शहीद अपने जिस्म और जान को ख़ुदा की राह में क़ुरबान कर देता है, आलिम अपने दिमाग़ और ज़ेहन को दीन की सरबुलन्दी के लिए लगा देता है और दौलतमन्द अपनी दौलत ख़र्च करके नेकियाँ समेटना और दीन का बोल-बाला करना चाहता है, लेकिन ख़ुदा के यहाँ ये तीनों बड़ी क़ुरबानियाँ क़बूल नहीं होतीं और इन क़ुरबानियों को अदा करनेवाले जन्नत के बजाय जहन्नम के खौफ़नाक अज़ाब में डाल दिए जाते हैं, क्योंकि उन्होंने यह सबकुछ अल्लाह की रिज़ा के बजाय अपना नाम करने और दिखावे के तौर पर किया था।

यह है दिखावे और नामवरी का अंजाम! अगर आप अपने हज को बरबाद करके जहन्नम मोल लेना नहीं चाहते तो आपके लिए ज़रूरी है कि अपनी नीयत ठीक रखें, हज सिर्फ़ अल्लाह के लिए करें और दिखावा और नामवरी की मिलावट ज़रा भी अपने दिल में न आने दें।

इस सिलसिले में आप यह बात अपने ज़ेहन में अच्छी तरह बिठा लें कि हज करके आपने कोई बड़ा काम या कारनामा अंजाम नहीं दिया है कि

आपका स्वागत किया जाए और जुलूस निकाला जाए, बल्कि अल्लाह का जो फ़र्ज़ आपके ज़िम्मे था, आपने उसको अदा करने की कोशिश की है। अगर आप इस फ़र्ज़ को अदा न करते तो बड़े मुजरिम होते। और अगर आपने उसे अल्लाह की ख़ुशी के लिए ठीक-ठीक अदा किया है तो आपने उस फ़र्ज़ को पूरा कर दिया और अल्लाह ने चाहा तो आप अज्र के हक़दार होंगे। लेकिन अगर आप इसके ज़रिए से दिखावा और नामवरी चाहेंगे और इसपर लोगों की तरफ़ से तारीफ़ और वाह-वाही चाहेंगे तो आपके लिए न कोई अज्र है और न हक़ीक़त में आप वह फ़र्ज़ अदा कर सके जो आपके ज़िम्मे था, बल्कि उल्टे आपने एक ऐसा काम किया जो अल्लाह को नाराज़ करनेवाला है और जो मुशरिकों को ही ज़ेब (शोभा) देता है। अल्लाह हमें और आपको हर वक़्त इस ख़तरे से बचाए!

तौबा और अल्लाह की तरफ़ पलटना

यह बात तफ़सील से आ चुकी है कि एक मुसलमान की सही हैसियत यह है कि वह 'मुवह्हिद' हो, यानी अल्लाह के सिवा न किसी की इबादत और बन्दगी करनेवाला हो, न किसी के आगे सिर झुकाने और उसकी ग़ुलामी करनेवाला हो, न अल्लाह के सिवा किसी को मालिक, माबूद, क़ानून बनानेवाला और हाकिम माननेवाला हो। मुस्लिम हो, यानी वह अपनी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की इताअत में दे देनेवाला हो। हनीफ़ हो, यानी हर ग़लत चीज़ और हर बातिल (असत्य) ताक़त और इक़्तिदार (सत्ता) से कटकर यकसूई के साथ अल्लाह का हो चुका हो। मुत्तक़ी हो, यानी हर हाल में अल्लाह से डरनेवाला और हर मामले में उसकी नाख़ुशी और नाफ़रमानी से बचने की कोशिश करनेवाला हो। ख़ुदा के रास्ते की तरफ़ दावत देनेवाला और मुजाहिद हो, यानी उसे क़ायम व ग़ालिब करने की लगातार कोशिश करनेवाला हो। साबिर और मुहसिन हो, यानी अल्लाह की राह में हर तरह की दुख़-तकलीफ़ सहनेवाला और दिल की लगन और शौक़ के साथ अल्लाह की रिज़ा के लिए अपनी ज़िन्दगी भी लगा देनेवाला और अपना सबकुछ क़ुरबान कर देनेवाला हो। ये एक मोमिन के ईमान के बुनियादी तक़ाज़े हैं और यही हज का मंशा और मक़सद भी है। इसलिए हज के सफ़र पर

निकलने से पहले तनहाई में बैठकर अपनी पूरी ज़िन्दगी का गहरा जायज़ा लीजिए, अब तक अल्लाह से बेनियाज़ी और ग़फ़लत या उसकी नाफ़रमानी में जो ज़िन्दगी गुज़र रही थी, उसपर पछताइए, रोइए, गिड़गिड़ाकर अल्लाह से माफ़ी माँगिए और तौबा कीजिए और आगे के लिए ख़ूब सोच-समझकर पक्का फ़ैसला कीजिए कि आप मुवह्हिद, मुस्लिम, हनीफ़, मुत्तक़ी, दीन की तरफ़ बुलाने वाले, मुजाहिद और साबिर व मुहसिन की ज़िन्दगी गुज़ारेंगे। इस तरह आप एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत करें, जिसमें शिर्क से बचते हुए अल्लाह की बन्दगी व इबादत और ख़ालिस मन से उसकी इताअत हो, ख़ुदा का डर और ख़ुदा व रसूल (सल्ल॰) से मुहब्बत हो, अल्लाह के लिए यकसूई और सिपुर्दगी हो, दीन की सरबुलन्दी के लिए जानतोड़ कोशिश और सब्र व इसतिक़ामत हो और अल्लाह और उसके दीन के लिए फ़िदा हो जाने, सरफ़रोशी और जान क़ुरबान कर देने का जज़्बा हो—यह फ़ैसला मरते दम तक के लिए कीजिए और पूरी मज़बूती (दृढ़ता) और पक्के इरादे के साथ कीजिए। इसके बिना आप ख़ुद सोचें कि अल्लाह के दरबार में क्या मुँह लेकर जाएँगे और किस तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर होने की हिम्मत करेंगे—इस तौबा के साथ जिन कोताहियों की भरपाई आपके बस में हो, उनकी भरपाई में कोई कसर न छोड़िए, ख़ास तौर से अगर आपने किसी इनसान का हक़ अपनी ज़बान, अपने हाथ या किसी और तरीक़े से मारा हो तो उसका हक़ वापस कीजिए या उससे माफ़ कराइए, इसके बिना अल्लाह आपकी तौबा क़बूल न करेगा।

दीन का इल्म

इस तरह आप जो अह्द (प्रतिज्ञा) करेंगे उसे पूरा करने के लिए ज़रूरी है कि आपको दीन का इल्म हो। दीन का इल्म हासिल करने के बारे में आप कुछ बातों का एहतिमाम सफ़र से पहले कीजिए, सफ़र के दौरान और उसके बाद भी बराबर करते रहिए—

(1) क़ुरआन की ज़्यादा-से-ज़्यादा तिलावत उसका मतलब समझते हुए कीजिए और उसकी रौशनी में अपनी ज़िन्दगी का जायज़ा लेते जाइए।

(2) हदीसों और सीरते-रसूल (सल्ल॰) का मुताला (अध्ययन) कीजिए।

(3) दीन की बुनियादी तालीमात को वाज़ेह करनेवाली किताबों का मुताला कीजिए।

(4) फ़िक़्ह की किसी भी किताब का मुताला कीजिए जिससे आपको इबादतों के मसले और अख़लाक़, मामलात और अल्लाह और बन्दों के हुक़ूक़ की तफ़सील मालूम हो।

(5) हज की हक़ीक़त और उसकी अदाएगी के तरीक़े बतानेवाली किताबों का ख़ूब ध्यानपूर्वक मुताला कीजिए ताकि आपको हज करने में परेशानी न हो और आप मुअल्लिम और तवाफ़ करानेवालों के मोहताज न रहें, बल्कि हज के मक़सद को पूरी तरह समझकर उसे ठीक-ठीक अदा कर सकें।

नमाज़

ईमान के बाद जिन पाँच चीज़ों पर इस्लाम की बुनियाद है, उनका ज़िक्र पहले आ चुका है। इन पाँच चीज़ों में सबसे अहम चीज़ नमाज़ है। नमाज़ की अहमियत क़ुरआन की बेशुमार आयतों और हदीसों में बताई गई है। यहाँ हम सिर्फ़ दो हदीसें बयान करते हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> ''बन्दे और कुफ़्र के बीच (फ़र्क़) नमाज़ का छोड़ना है।''
>
> (हदीस : अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

यानी नमाज़ को छोड़ देने के बाद इनसान कुफ़्र से इतना क़रीब हो जाता है कि बस अगला क़दम कुफ़्र ही की तरफ़ उठेगा। इससे अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि नमाज़ का छोड़ना इनसान के दीन और ईमान के लिए कितना ख़तरनाक है। एक और हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने सहाबा किराम (रज़ि॰) से फ़रमाया—

> ''तुम्हारा क्या ख़याल है, अगर तुममें से किसी के दरवाज़े पर एक नहर बहती हो जिसमें वह हर दिन पाँच बार नहाता हो, क्या उसके बाद भी उसपर कुछ मैल बाक़ी रहेगा? सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, उसपर तो मैल ज़रा भी बाक़ी न रहेगा। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, बस यही मिसाल है पाँचों वक़्त की

नमाज़ों की कि अल्लाह उनके ज़रिए से गुनाहों को मिटा देता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा)

इसलिए एक मुसलमान को किसी भी हाल में नमाज़ से ग़ाफ़िल न होना चाहिए, ख़ास तौर से हज में तो इसका एहतिमाम और ज़्यादा होना चाहिए। क्योंकि जिस काबा की ज़ियारत (दर्शन) को आप जा रहे हैं उसकी तामीर ही नमाज़ क़ायम करने के लिए हुई है। काबा को अल्लाह ने क़िबला बनाया है जिसकी तरफ़ रुख़ करके ही नमाज़ पढ़ी जाती है। फिर हज की तरफ़ सबसे पहले बुलानेवाले बुज़ुर्ग हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने अपनी औलाद को काबा के पास इसी लिए बसाया था कि वे नमाज़ क़ायम करें। क़ुरआन में उनकी यह बात इस तरह बयान हुई है—

"ऐ हमारे रब! मैंने अपनी औलाद को बिन खेती की घाटी में तेरे मुहतरम घर के पास बसाया है, ऐ हमारे रब! ताकि वे नमाज़ क़ायम करें।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-37)

और हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने अपने लिए और अपनी औलाद के लिए जो दुआ माँगी थी वह यह थी—

"ऐ मेरे रब! मुझे नमाज़ क़ायम करनेवाला बना और मेरी औलाद को भी, ऐ हमारे रब! मेरी दुआ क़बूल कर ले।"

(क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-40)

और इसी हज का एक मुस्तक़िल हिस्सा यह भी है कि नमाज़ क़ायम की जाए। हाजियों की ख़ूबियाँ बयान करते हुए अल्लाह फ़रमाता है—

"और ये लोग नमाज़ को क़ायम करनेवाले हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-35)

'नमाज़ क़ायम करना' यह नहीं है कि बस उल्टी-सीधी नमाज़ पढ़ ली जाए। नमाज़ क़ायम करने का मतलब है कि नमाज़ को अच्छे तरीक़े से और पूरी तरह अदा करना। क़ुरआन और हदीसों में 'नमाज़ क़ायम करने' की जो वज़ाहत है वह यह है कि नमाज़ ठीक वक़्त पर जमाअत से पढ़ी जाए, पाबन्दी से पढ़ी जाए, आजिज़ी और ख़ुशू के साथ (यानी गिड़गिड़ाते हुए) पढ़ी जाए, यह समझकर पढ़ी जाए कि हम अल्लाह के सामने खड़े हैं और

वह हमें देख रहा है। नमाज़ में जो कुछ पढ़ा जाए, समझकर पढ़ा जाए और इस एहसास के साथ पढ़ा जाए कि यह वह अह्द और क़रार है जो हम अल्लाह से कर रहे हैं।

मतलब यह कि नमाज़ को ज़ाहिर और बातिन हर तरह से ठीक-ठीक अदा किया जाए। इस तरह नमाज़ पढ़ना एक मोमिन की, और ख़ास तौर से एक हाजी की, सबसे बड़ी और अहम ज़िम्मेदारी है। ज़रा सोचिए तो! कितनी अजीब है यह बात कि आप ख़ुदा के दरबार में हाज़िर होने जा रहे हैं, मगर इस तरह कि आपने खुद अपनी ग़फ़लत से दीन के सबसे बड़े सुतून को ढा दिया हो! क्या यह बड़ी सरकशी नहीं है और क्या इसके बाद आप अल्लाह की रहमत व इनायत के बजाय उसकी लानत और अज़ाब के हक़दार न ठहरेंगे?—इसलिए सफ़र में इस बात की भरपूर कोशिश कीजिए कि नमाज़ जमाअत से और वक़्त पर अदा हो, सुस्ती और तबीयत की थोड़ी-बहुत ख़राबी को इसमें रुकावट न बनने दीजिए। नमाज़ें ठीक कीजिए, नमाज़ में जो कुछ पढ़ते हों उसका मतलब ज़ेहन में बिठाइए और ठहर-ठहरकर, समझ-समझकर, आजिज़ी (विनम्रतापूर्वक) और ख़ुलूस के साथ नमाज़ अदा कीजिए। जितनी आपकी नमाज़ें बेहतर होंगी उतनी ही आपके दिल में अल्लाह की मुहब्बत जोश मारेगी, आप अपने हज को ज़्यादा-से-ज़्यादा बेहतर बना सकेंगे और अल्लाह से क़रीब-से-क़रीब होते चले जाएँगे। फ़र्ज़ नमाज़ों के साथ नफ़्ल नमाज़ों का भी एहतिमाम कीजिए, ख़ास तौर से तहज्जुद का, और मक्का पहुँचकर मस्जिदे-हराम में और मदीना पहुँचकर मस्जिदे-नबवी में फ़र्ज़ नमाज़ों के अलावा ज़्यादा-से-ज़्यादा नफ़्ल नमाज़ें पढ़िए। इन मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने का अज्र बहुत ज़्यादा है। लेकिन यह बात याद रखिए कि यह अज्र उल्टी-सीधी नमाज़ों का नहीं है, बल्कि उन नमाज़ों का है जिन्हें क़ायम करने और ठीक-ठीक अदा करने की कोशिश की गई हो। (मस्जिदे-हराम में एक नमाज़ का अज्र व सवाब एक लाख गुना है और मस्जिदे-नबवी में एक नमाज़ का अज्र व सवाब एक हज़ार गुना है।)

अल्लाह का ज़िक्र

नमाज़ क़ायम करने के बाद अल्लाह का ज़िक्र, उसकी इबादत और

बन्दगी पर साबित क़दम रखने, अल्लाह की बड़ाई और मुहब्बत पैदा करने और उसका महबूब बनने का बेहतरीन ज़रिआ है। क़ुरआन और हदीसों में ज़िक्र की बहुत अहमियत और फ़ज़ीलत बयान की गई है और ईमानवालों को हुक्म दिया गया है कि वे अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करें—

"ऐ ईमानवालो! अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करो और सुबह व शाम उसकी बड़ाई बयान करो।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयतें-41, 42)

ईमानवालों की ख़ूबी ही यह बताई गई है—

"(ये वे लोग हैं) जो अल्लाह को (हर हाल में) याद करते हैं, खड़े, बैठे और लेटे।"(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-191)

फिर आप तो अल्लाह के दरबार में हाज़िर होने जा रहे हैं, आपको तो उसकी याद में ज़्यादा-से-ज़्यादा लगना ही चाहिए, ख़ासकर इसलिए भी कि हज के बारे में क़ुरआन में अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ बार-बार ध्यान दिलाया गया है और हुक्म दिया गया है कि हाजी अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करें। इसलिए आप हज के दौरान फ़िज़ूल और बेकार की बातों और कामों से पूरी तरह बचें और सारे वक़्त को नेक कामों, ख़ास तौर से अल्लाह की याद या ज़िक्रे-इलाही में लगाएँ।

नमाज़ के बाद अल्लाह के ज़िक्र का अच्छा तरीक़ा क़ुरआन की तिलावत है। हज के दौरान क़ुरआन मजीद को पूरी मुहब्बत और अज़मत के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़िए। उसका मतलब ज़ेहन में बिठाने की कोशिश कीजिए और उसकी रौशनी में अपनी ज़िन्दगी का बार-बार जायज़ा लीजिए। ज़िक्र का दूसरा तरीक़ा यह है कि सहीह हदीसों में जो अज़कार बयान किए गए हैं, उनसे ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा उठाइए। लेकिन यह बात अच्छी तरह याद रखिए कि ज़िक्र का हक़ीक़ी फ़ायदा तभी हासिल होगा जब आप समझकर, दिल लगाकर, आजिज़ी और दिल के ख़ौफ़ और मुहब्बत के साथ अल्लाह को याद करें और उनसे जो ज़िम्मेदारियाँ लागू होती हैं, उन्हें भी याद रखें।

अल्लाह से दुआ

मोमिन का काम अल्लाह की इबादत करना है। हदीस में है कि अल्लाह

के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "दुआ ही इबादत है, फिर आप (सल्ल॰) ने यह आयत पढ़ी 'व क़ा-ल रब्बुकुमुद-ऊनी अस-तजिब लकुम' यानी तुम्हारे रब ने फ़रमाया, मुझसे दुआ माँगो, मैं तुम्हारी दुआ क़बूल करूँगा।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, अहमद, इब्ने-हिब्बान, हाकिम, इब्ने-अबी-शैबा)

और क़ुरआन में मोमिनों की बेहतरीन सिफ़तों में से एक सिफ़त यह बयान की गई है कि वे अल्लाह से बराबर दुआएँ करते रहते हैं। हक़ीक़त यह है कि अल्लाह से ताल्लुक़ को मज़बूत बनाने और उससे मुहब्बत करने के लिए दुआ बेहतरीन ज़रिआ है। दुआ मोमिन का एक बड़ा सहारा है, मोमिन कभी अपनी तदबीर (उपाय) पर भरोसा नहीं करता, वह अपने रहीम और करीम आक़ा से लौ लगाने और उससे बार-बार दुआ करने पर मजबूर है। फिर उसका आक़ा भी इसे पसन्द करता है कि हर छोटी-बड़ी चीज़ में उसी से लौ लगाई जाए और उसी से माँगा जाए।

आप एक बड़ी मुहिम (अभियान) पर जा रहे हैं। आप अपनी ज़िन्दगी की काया पलटने का इरादा रखते हैं, आपको तो अल्लाह से बहुत ज़्यादा दुआ करनी चाहिए। आप अल्लाह के आगे गिड़गिड़ाकर और रो-रोकर उससे अपनी हिदायत, दीन पर क़ायम और जमे रहने, मुसलमानों की हिदायत और भलाई, सारे इनसानों की भलाई और अपनी तमाम जाइज़ ज़रूरतों के लिए दुआ माँगिए। अपने गुनाहों, अपनी कोताहियों और अपनी ग़फ़लतों के सिलसिले में बार-बार इसतिग़फ़ार कीजिए और ज़्यादा-से-ज़्यादा कीजिए। तवाफ़ के वक़्त, मुल्तज़म के पास, हरम के अन्दर, सफ़ा और मरवा पर, अरफ़ात में, मुज़्दलिफ़ा में, रमी-ए-जिमार के बाद और मस्जिदे-नबवी में ख़ास तौर से अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद कीजिए और उससे ख़ूब-ख़ूब दुआएँ कीजिए। अगर मसनून दुआएँ याद हों तो अच्छा है, इस शर्त के साथ कि आप उनका मतलब भी जानते हों और मतलब को ज़ेहन में रखकर दुआ कर सकें, वरना अपनी ज़बान में दुआ कीजिए।

नेक अमल

इस बात की भरपूर कोशिश कीजिए कि हज के दौरान आप जो काम भी करें, अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ ही करें और उसी की ख़ुशी के लिए करें और हर उस काम से बचें जो उसकी नाराज़गी का सबब हो। आपकी बातचीत, आपका उठना-बैठना, आपका खाना-पीना, आपका सोना-जागना, आपके ताल्लुक़ात व मामलात, ग़रज़ आपकी हर चीज़ अल्लाह के हुक्म और उसके रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ हो और सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा और आख़िरत का अज्र हासिल करने के लिए हो। इस तरह आपका यह सफ़र इबादत और नेक अमल बन जाएगा और आप हर-हर बात पर अल्लाह की रिज़ा और उसके इनाम के हक़दार होंगे, आख़िर आपने यह सारा वक़्त अल्लाह ख़ुशी ही के लिए तो निकाला है।

लोगों के साथ नेक बरताव करना

यह बात आप अच्छी तरह जान चुके हैं कि दीन में बन्दों के हुक़ूक़ और अधिकारों की अहमियत क्या है और हज का बन्दों के हुक़ूक़ की अदायगी से क्या ताल्लुक़ है। इसलिए यह बात बहुत ग़लत होगी कि आप ऐसे पाक सफ़र की तरफ़ रवाना हों और फिर भी लोगों को आपके हाथों दुख पहुँचे। हज का सफ़र इस मामले में तरबियत का बहुत ही अच्छा कोर्स है। अगर आपने इससे पूरा फ़ायदा उठाया तो आप अपने अन्दर बड़ी ख़ूबियाँ पैदा कर सकेंगे और बड़ा अज्र भी पा सकेंगे। इस सफ़र में आपकी तरफ़ से किसी को कोई दुख न पहुँचने पाए। जहाज़ में सवार होने, हरम में नमाज़ पढ़ने, मीज़ाबे-रहमत (रहमत का परनाला) के नीचे पहुँचने, ज़मज़म के पानी तक पहुँचने, काबा के अन्दर दाख़िल होने और हजरे-असवद को चूमने और इसी तरह के दूसरे मौक़ों पर दूसरों से धक्का-मुक्की और लड़ाई-झगड़ा न कीजिए। अपने आराम के लिए दूसरों को दुख व तकलीफ़ न दीजिए, न उनसे झगड़ा और तू-तू, मैं-मैं कीजिए, और इस हदीस को बार-बार याद रखिए—

> "मुसलमान तो वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से दूसरे मुसलमान महफ़ूज़ रहें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

दूसरे लोगों से अगर आपको दुख और तकलीफ़ पहुँचे तो सब्र कीजिए, इतना ही नहीं बल्कि उनकी जो मदद या ख़िदमत आपसे बन पड़े, कर डालिए। इस सिलसिले की एक अहम बात यह है कि अपने ग़रीब साथियों और ज़रूरतमन्दों की जो कुछ माली मदद कर सकें, उससे मुँह न मोड़िए और बीमार साथियों की देखभाल भी कीजिए।

हक़ की दावत और गवाही

यह बात पहले तफ़सील से आ चुकी है कि दुनिया के तमाम इनसानों तक दीने-हक़ की दावत पहुँचाना, अपनी ज़िन्दगी से दीन का अमली नमूना पेश करना और दुनिया में अल्लाह के दीन को क़ायम और ग़ालिब करना इस मुस्लिम उम्मत की बड़ी ज़िम्मेदारी है और यह बात भी वाज़ेह हो चुकी है कि इस बड़े मक़सद से हज का क्या ताल्लुक़ है। इसलिए इस मामले में आपका ग़फ़लत बरतना बिलकुल सही नहीं है। आपके आस पास बड़ी तादाद में इनसान रहते हैं, उनमें बहुत-से इनसान दीन की बुनियादी तालीमात से भी बेख़बर होंगे , यहाँ तक कि उनमें कितने ही ऐसे होंगे जो कलिमा का मतलब भी न जानते होंगे और नमाज़ भी ठीक-ठीक न पढ़ सकते होंगे या नमाज़ पढ़ते ही न होंगे।

इसी तरह बहुत-से लोग ऐसे होंगे जो नमाज़ पढ़ लेने ही को दीन समझते हैं, न उनके अख़लाक़ ठीक, न उनकी आदतें अच्छी, न उनके मामलात और ताल्लुक़ात सही, न उन्हें पता कि दीन का हक़ीक़ी मतलब क्या है, उसका फैलाव कहाँ तक है और इस दौर में दीन के तक़ाज़े क्या-क्या हैं? ऐसे तमाम लोगों का आपपर हक़ है। अगर आप उन्हें सही रास्ता दिखाने की कोशिश न करेंगे तो मुजरिम होंगे और ख़ुदा के यहाँ आपसे पूछगछ होगी। इसलिए जितना भी वक़्त आप बचा सकें इसी काम में लगाएँ। यह काम नफ़्ल नमाज़ों से ज़्यादा ज़रूरी और अज्र व सवाबवाला है, बल्कि यह आपका फ़र्ज़ है। इस मक़सद के लिए आपको दो काम करने हैं—एक यह कि आप ख़ुदा के हुक्मों का अमली नमूना बनें, आपके अमल से लोग ख़ुद ही मुतास्सिर होंगे और अपनी इस्लाह कर सकेंगे। दूसरा यह कि फ़िज़ूल और बेकार बातों और कामों में वक़्त बरबाद करने के बजाय आप लोगों को दीन

की तालीमात से आगाह करें। हमदर्दी, नर्मी, मुहब्बत और हिकमत के साथ उनकी ग़लतियों की इस्लाह करें। दीनी किताबों को पढ़-पढ़कर सुनाएँ या पढ़ने को दें। दावत का यह काम आपको जहाँ भी मौक़ा मिले कर सकते हैं। इस तरह आपके सामने बहुत-से मौक़े हैं, इन मौक़ों से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाइए। इस सफ़र में आपको अच्छी तरह अन्दाज़ा हो जाएगा कि मुसलमानों में दीनी और अख़लाक़ी गिरावट कितनी आ चुकी है और ख़ुद हिजाज़ के इलाक़े में दीन से कितनी दूरी है? इन हालात से आप मायूस, उदास और बददिल न हों, न कोई ग़लत असर लें, इससे आपको सिर्फ़ एक असर लेना चाहिए और वह यह कि आपकी ज़िम्मेदारियाँ बहुत ज़्यादा हैं और हालात की इस्लाह का मुतालबा भी बहुत ज़्यादा है। इसलिए हालात के सुधार में लग जाइए।

सब्र

यह बात भी आपकी जानकारी में आ चुकी है कि हक़ के रास्ते में मुश्किलों और परेशानियों का सामना ज़रूर करना पड़ता है क्योंकि अल्लाह इन्हीं के ज़रिए से ईमान का दावा करनेवालों के ईमान को आज़माता है। फिर जो लोग इन मुसीबतों में जमे रहते हैं उन्हीं को वह सच्चा मोमिन मानता है। यह बात भी आप जान चुके हैं कि हज और क़ुरबानी का सब्र से गहरा ताल्लुक़ है। इसलिए हज के सफ़र में जिन मुसीबतों का सामना हो उनसे परेशान, मायूस, रंजीदा या ग़ुस्सा न हों। ये अल्लाह के रास्ते की तकलीफ़ें हैं, इन्हें सब्र और सुकून के साथ ही झेलना चाहिए। अगर आपने मुसीबतों पर सब्र किया तो आप बड़े अज्र व सवाब के हक़दार होंगे और हक़ के रास्ते में बड़ी-से-बड़ी मुसीबतों को झेलने की हिम्मत और तौफ़ीक़ पा सकेंगे। अगर कभी आप मुसीबतों और परेशानियों से कुछ ज़्यादा परेशान हो जाएँ तो सब्र के बड़े अज्र को याद करें, जन्नत की नेमतों और अल्लाह की रिज़ा और उसके क़ुर्ब को याद करें, इस बात को याद करें कि अल्लाह अपने उन बन्दों से मुहब्बत करता है जो उसकी राह में मुसीबतें झेलते और सब्र करते और जमे रहते हैं। अल्लाह के घर काबा की याद ताज़ा करें और अल्लाह के इस फ़ज़्ल को याद करें कि उसने आपको अपने मुहतरम और

पाक घर की ज़ियारत की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई। मुसीबत आने और परेशान होने की हालत में लोगों के सामने रोने के बजाय अल्लाह से अपनी तकलीफ़ों का इज़हार करें और उसी से मुसीबत दूर करने की दुआ करें। इनसानों के ग़लत बरताव और बद-अख़लाक़ी से कोई तकलीफ़ पहुँचे तो इस हक़ीक़त को ज़ेहन में ताज़ा करें कि उम्मते-मुस्लिमा की दीनी और अख़लाक़ी हालत बहुत ख़राब और क़ाबिले-रह्म है और उम्मत का हर शख़्स इसका ज़िम्मेदार है। अगर मुसलमान दीन का सही नमूना पेश करते और दीन की दावत और इक़ामत का हक़ अदा करते तो उम्मते-मुस्लिमा की हालत इतनी ख़राब न होती और हिजाज़ की धरती में भी दीन से दूरी न होती। ऐसे मौक़े आने पर आप नाराज़ या ग़ुस्सा होने के बजाय अल्लाह से दुआ कीजिए कि वह आपको और दूसरे तमाम मुसलमानों को दीन की सही समझ और दीन के तक़ाज़ों को समझने की तौफ़ीक़ दे और इस सिलसिले में आप जो कुछ कर सकें, उसपर कमर कस लीजिए।

बड़ाई और मुहब्बत

इस सफ़र में साथ ले जानेवाला सबसे बड़ा सामान अज़मत और मुहब्बत है। आप कायनात के बादशाह के बड़े दरबार में जा रहे हैं, जो तमाम ख़ूबियों और सिफ़ात का सरचश्मा (स्रोत) है और जिसके इनामात आपपर बेहद हैं। इसलिए आपके पास अज़मत और मुहब्बत का सामान जितना भी हो कम है।

हिजाज़ की धरती का ज़र्रा-ज़र्रा मुहब्बत का सबक़ देता है। यहाँ अल्लाह का पाक और प्यारा घर है। यहाँ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और आप (सल्ल०) के साथी रहते थे, इन मस्जिदों में उन्होंने नमाज़ें पढ़ी थीं, इन रास्तों से गुज़रे थे। इसलिए यह पूरा इलाक़ा दियारे-हबीब है। उससे अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की मुहब्बत व अज़मत के जितने भी सबक़ आप ले सकते हों, बेझिझक लें। हज के दौरान ज़्यादा-से-ज़्यादा नेक काम कीजिए और शौक़ और मुहब्बत के साथ कीजिए। तलबिया, ज़िक्र, तवाफ़, नमाज़ और दुआ वग़ैरा मुहब्बत और अज़मत के साथ कीजिए। हाँ, इस बात का ख़ास ख़याल रखिए कि मुहब्बत और अज़मत दीन और तौहीद के दायरे में रहे

और आप किसी ऐसे काम के क़रीब न जाएँ जिसमें शिर्क की थोड़ी-सी बू भी आती हो। जब मदीना पहुँचें तो अदब व एहतिराम और ख़ुलूस व मुहब्बत के साथ बहुत ज़्यादा दुरूद और सलाम भेजें। मस्जिदे-नबवी में ख़ुलूस और ख़ुशू (दिल की नम्रता) के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा नमाज़ें पढ़ें। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की क़ब्र पर पहुँचकर बड़े अदब से आहिस्ता-आहिस्ता दुरूद और सलाम पेश करें, लेकिन आप (सल्ल॰) से मुरादें न माँगें, न आप (सल्ल॰) से परस्तिश और नियाज़मन्दी के ताल्लुक़ात जोड़ें, क्योंकि ये मुशरिकों जैसे काम हैं और अच्छे कामों को बरबाद कर देनेवाले हैं।

अह्द ताज़ा करना

सबसे बड़ी और सबसे आख़िरी बात यह है कि अल्लाह के दरबार में पहुँचकर अपनी ज़िम्मेदारियों को याद कीजिए। आप अल्लाह की उस बारगाह में आए हैं जो तौहीद, इस्लाम और हनीफ़ियत का मरकज़ है। यहाँ तौहीद, इस्लाम और हनीफ़ियत का मतलब अच्छी तरह समझकर उनपर जमने और उनके तक़ाज़ों को पूरा करने का अह्द कीजिए। यह दीने-हक़ की दावत, अल्लाह की राह में जानतोड़ कोशिश, हक़ के लिए जान की बाज़ी लगाना, सब्र और इसतिक़ामत का मरकज़ है। यहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) रहते थे जिन्होंने दीने-हक़ के लिए अपनी पूरी ज़िन्दगी और अपना सबकुछ लगा दिया था। यहीं मुहम्मद (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथियों ने तरह-तरह की तकलीफ़ें उठाई थीं। यहीं आप (सल्ल॰) का मज़ाक़ उड़ाया गया, यहीं आप (सल्ल॰) को गालियाँ दी गईं, यहीं आप (सल्ल॰) के साथियों को बुरी तरह सताया गया, यहीं आप (सल्ल॰) को जान से मार देने के फ़ैसले किए गए और यहीं आप (सल्ल॰) को और आप (सल्ल॰) के साथियों को अपना सबकुछ छोड़कर हिजरत करने पर मजबूर होना पड़ा था। यहाँ से ताइफ़ भी क़रीब है, जहाँ आप (सल्ल॰) को दावते-हक़ के जुर्म में लहूलुहान किया गया था। इन सब वाक़िआत और हादसों को याद कीजिए और सोचिए कि दीन के मामले में आपकी ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं? फिर यह मदीना है। यहाँ का चप्पा-चप्पा दीनी

जिद्दो-जुहद का गवाह है, यहीं मुसलमान जोश-ख़रोश और पूरे शौक़ के साथ दीन का इल्म हासिल करते, यहीं ईमानवाले ख़ुदा और रसूल की पैरवी में एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश करते और यहीं अल्लाह के जाँनिसार बन्दे उसकी राह में सबकुछ क़ुरबान करते थे। यहीं चबूतरेवाले (असहाबे-सुफ़्फ़ा) थे जो कई-कई दिन फ़ाक़े करके दीन का इल्म हासिल करते, दीन की तालीम देने और अल्लाह के दीन को फैलाने और उसे ग़ालिब और सरबुलन्द करने के लिए निकलते। फिर यहीं वे बीवियाँ, माएँ और बहनें थीं जो ख़ुदा और रसूल की इताअत करतीं, अल्लाह की राह में अपनी दौलत बेझिझक ख़र्च करतीं और अपने शौहरों, बेटों और भाइयों को अल्लाह की राह में ख़ुशी-ख़ुशी जानें क़ुरबान करने भेजतीं। फिर यहीं जन्नतुल-बक़ी है, और बद्र और उहुद यहाँ से क़रीब है, यहाँ वे लोग आराम कर रहे हैं जिन्होंने ख़ुदा के दीन के लिए अपनी ज़िन्दगियाँ लगा दी थीं और अपनी जानें देकर अल्लाह के दीन को ज़िन्दा और सरबुलन्द किया था।

इन सब बातों पर बार-बार ग़ौर व फ़िक्र कीजिए और सोचिए कि क्या आज दीन की दावत और इक़ामत की ज़रूरत नहीं है? क्या आज दीन मग़लूब और पामाल नहीं है? क्या आज ख़ुद दीन के नामलेवा दीन से दूर नहीं है? क्या दीन की तरफ़ बुलाने और उसे क़ायम व ग़ालिब करने की ज़िम्मेदारी उनपर नहीं हैं? क्या ख़ुदा की मुहब्बत का मतलब यही है कि हम उसके दीन को दबा हुआ, उसके हुक्मों को मिटते और दुनिया में उसकी बग़ावत व नाफ़रमानी और कुफ़्र को फैलते और परवान चढ़ते देखें और टस-से-मस न हों? क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की मुहब्बत का तक़ाज़ा यही है कि दीन के जिस पौधे को आप (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथियों ने अपनी ज़िन्दगियों, अपने मालों और अपने ख़ून से सींचा था उसे हम सूख जाने दें और उसको ज़िन्दा करने और पलने-बढ़ने के लिए अपनी-सी कोशिशें न करें? यही सबकुछ सोचिए और फिर अल्लाह के घर और मस्जिदे-नबवी में अल्लाह की भरपूर इबादत का, उसके रसूल की बिना आनाकानी के इताअत का, उसके दीन की दावत व इक़ामत का और उसकी राह में सबकुछ लगा देने का अह्द कीजिए। यही हज का हासिल है, यही

हज का तरीक़ा

हज की क़िस्में

हज तीन तरह के हैं—

(1) **हज्जे-इफ़रादः** यानी मीक़ात (एहराम बाँधने की जगह) से सिर्फ़ हज की नीयत से एहराम बाँधे।

(2) **हज्जे-क़िरानः** यानी मीक़ात से हज और उमरे दोनों की नीयत करके एहराम बाँधें और दोनों को एक साथ अदा करें।

(3) **हज्जे-तमत्तोः** यानी मीक़ात से सिर्फ़ उमरे की नीयत से एहराम बाँधें, मक्का पहुँचकर उमरा अदा करके एहराम खोल दें। फिर आठवीं ज़िल-हिज्जा को मस्जिदे-हराम (काबा) ही से हज का एहराम बाँधें। इफ़राद और क़िरान में एहराम की सारी पाबन्दियाँ हज अदा होने तक क़ायम रहती हैं, जिनको निभाना ज़्यादातर लोगों के लिए मुश्किल होता है, इसके बरख़िलाफ़ तमत्तो में आसानियाँ हैं, इसलिए हम नीचे तमत्तो का तरीक़ा लिखते हैं और हाजियों को तमत्तो ही का मशूवरा देते हैं।

जहाज़ के यलमूलम[1] के सामने से गुज़रने से पहले ही अपनी हजामत बनवा लें, बग़ल वग़ैरा के बाल साफ़ करें, नाख़ुन कटवा लें, अच्छी तरह नहा लें कि मैल-कुचैल न रहे। अगर ग़ुस्ल न कर सकें तो वुज़ू कर लें, सिले कपड़े उतारकर तहबन्द बाँध लें, ऊपर से चादर ओढ़ लें, इत्र लगाएँ फिर दो रकआत नफ़्ल नमाज़ अदा करें। सलाम फेरने के बाद ही सिर से चादर उतार दें और दिल से अल्लाह की रिज़ा के लिए उमरे की नीयत करें। साथ ही ऊँची आवाज़ में तलबिया कहें—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ ، لَبَّيْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ ، إِنَّ
الْحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ

1. यलमूलम पर किसी वजह से एहराम न बाँध सकें तो जद्दा से बाँध सकते हैं। मदीना पहले जा रहे हों तो यहाँ एहराम बाँधने के बजाय मदीना से वापसी पर बाँधें। फ़र्ज़ अदा करनेवालों को पहले हज अदा करना चाहिए, फिर मदीना जाना चाहिए।

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क लब्बैक, इन्नल-हम-द वन्निअ्-म-त ल-क वल-मुल-क ला शरी-क लक।

"मैं हाज़िर हूँ! ऐ अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ! (तेरे दरबार में) मैं हाज़िर हूँ! तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ! बेशक तारीफ़ तेरे ही लिए है! नेमतें तेरी ही हैं और इक़तिदार और हुक्मरानी तेरे ही लिए है! तेरा कोई शरीक नहीं।"

पूरे शौक़ के साथ ख़ुदा को हाज़िर और नाज़िर जानते हुए उसे मुख़ातब करते हुए तलबिया कही जाए और ख़ूब सोच-समझकर कही जाए।

नाजाइज़ काम

अब आप एहराम की हालत में हैं। इस हालत में आपके लिए सिला हुआ कपड़ा पहनना, सिर और चेहरा ढाँकना, टखने ढाँकनेवाला जूता या मोज़ा पहनना, नाखुन काटना, बदन के किसी भी भाग से बाल काटना, कंघी करना, तेल लगाना, बदन या कपड़ों की जूँ मारना, ख़ुशबू लगाना, बीवी से हमबिस्तरी करना, किसी भी तरह की शहवानी (कामवासना-सम्बन्धी) बात या हरकत करना, ख़ुश्क़ी के जानवरों का शिकार करना वग़ैरा ये सब बातें हराम हैं। हाँ, औरतें सिले कपड़े और मोज़े पहन सकती हैं और सिर ढाँक लेंगी। लेकिन चेहरे पर कपड़ा डालना, हाथ में दस्ताने पहनना और ज़ाफ़रान से रंगा हुआ कपड़ा पहनना उनके लिए भी मना है।

एहराम की हालत में ख़ालिस पानी से नहाना जाइज़ है, लेकिन मैल दूर न करें। और बिना ख़ुशबू का सुरमा लगाना, मूज़ी (तकलीफ़ देनेवाले) जानवरों को मारना, रुपये की थैली या पेटी तहबन्द के ऊपर या नीचे बाँधना और तहबन्द में रुपया या घड़ी (और मोबाइल) के लिए जेब लगाना जाइज़ है।

करने के काम

अब मक्का पहुँचने तक आपके लिए कोई ख़ास काम नहीं है। आप अपना सारा वक़्त अल्लाह को राज़ी करने और उसकी इबादत में गुज़ारिए, नमाज़ें एहतिमाम के साथ पढ़िए, क़ुरआन की समझकर तिलावत कीजिए,तौबा

और इसतिग़फ़ार कीजिए, अल्लाह को ख़ूब याद कीजिए और उससे गिड़गिड़ाकर दुआएँ माँगिए, तलबिया ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़िए, क्योंकि यही आपका ख़ास ज़िक्र है। किसी से मिलते वक़्त, ऊपर चढ़ते और नीचे उतरते वक़्त, सुबह के वक़्त और नमाज़ों के बाद ऊँची आवाज़ से बार-बार तलबिया पढ़िए और इसका मतलब समझकर अपनी ज़िम्मेदारियाँ याद कीजिए। लड़ाई-झगड़ा करने, लोगों को तकलीफ़ देने और फ़ुज़ूल की बातों से बचिए। लोगों की ख़िदमत कीजिए, दीन का इल्म हासिल कीजिए, लोगों को दीन की तालीम दीजिए और ये सब शौक़ और मुहब्बत के साथ अल्लाह की रिज़ा के लिए कीजिए।

मक्का में ठहरना

जद्दा से चलने के बाद शमीसिया नामक एक जगह है। यहाँ से हरम की हदें शुरू हो जाती हैं। यहीं हुदैबिया का मैदान है जहाँ नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह की राह में मर मिटने के लिए सहाबा किराम (रज़ि॰) से बैअत ली थी। इस मुक़ाम से गुज़रते वक़्त उस बैअत का तसव्वुर कीजिए। और चूँकि आप हरम की हदों में दाख़िल हो रहे हैं, इसलिए अदब, एहतिराम के जज़बात और ख़ुशू के साथ (विनम्रतापूर्वक) दुआएँ माँगते हुए आगे बढ़िए। मक्का में दाख़िल होने से पहले ग़ुस्ल कीजिए और दो रकअत नमाज़ पढ़ लीजिए। बेहतर है कि आप जद्दा ही में नहा लें, क्योंकि गाड़ीवाले ख़ाहिश के मुताबिक़ गाड़ी नहीं रोकते। मक्का में ख़ुशू और ख़ुज़ू के साथ अदब और एहतिराम से तलबिया पढ़ते हुए दाख़िल हों।

मस्जिदे-हराम (काबा) की हाज़िरी और तवाफ़

मक्का में दाख़िल होने के बाद वुज़ू करके अल्लाह के दरबार में उसकी अज़मत और जलाल (प्रताप) का ध्यान रखते हुए ख़ुशू व ख़ुज़ू के साथ मस्जिदे-हराम (काबा) में उस दरवाज़े से दाख़िल हो जाइए जिसका नाम बाबुस्सलाम है। और सीधे हजरे-असवद के पास आइए और एहराम की चादर को दाहिने कन्धे के नीचे से निकालकर बाएँ कन्धे पर डाल लीजिए, फिर हजरे-असवद की तरफ़ बैतुल्लाह के सामने इस तरह खड़े हो जाइए कि आपका दाहिना कन्धा काबा के दाहिनी तरफ़ हो, फिर तवाफ़ की नीयत

करके दाहिनी तरफ़ इतना चलिए कि हजरे-असवद आपके सामने हो जाए और بِسْمِ اللّٰهِ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَلِلّٰهِ الْحَمْدُ

बिसमिल्लाहि अल्लाहु अकबर ला इला-ह इल्लल्लाहु व लिल्लाहिल-हम्द।

"अल्लाह के नाम से, अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है।"

कहकर हजरे-असवद पर दोनों हाथ रखकर धीरे से उसे चूमिए और अगर ऐसा न हो सके तो हाथ से छूकर चूम लीजिए या किसी छड़ी वग़ैरा से हजरे-असवद को छूकर उसे चूम लीजिए, या अपनी जगह खड़े-खड़े दोनों हाथों की हथेलियाँ हजरे-असवद की तरफ़ कर दीजिए और ऊपरवाली दुआ पढ़कर उन्हीं को चूम लीजिए। इनमें से जो हो सके कर लीजिए, लेकिन किसी को किसी भी तरह तकलीफ़ न पहुँचाइए। इसके बाद काबा के दरवाज़े[1] की तरफ़ चलिए, इस तरह कि काबा बाएँ कन्धे की तरफ़ रहे और हतीम के अन्दर घुसकर नहीं, बल्कि बाहर से तवाफ़ कीजिए। रुकने-यमानी के पास पहुँचकर उसे छूते हुए या उसकी तरफ़ इशारा करते हुए गुज़र जाइए, फिर हजरे-असवद के पास पहुँचिए। यह एक चक्कर हुआ। इसी तरह हर बार हजरे-असवद को चूमकर सात चक्कर लगाए जाते हैं। सातवें चक्कर के बाद हजरे-असवद को फिर बोसा दीजिए (चूमिए), अब एक तवाफ़ हुआ। इस तवाफ़ में शुरू के तीन चक्करों में ज़रा कन्धे हिलाकर, अकड़कर, पास-पास क़दम डालकर कुछ तेज़ चलिए, बाक़ी चार चक्करों में मामूली रफ़तार से चलिए। तवाफ़ में मुअल्लिम (हज के तरीक़े के बारे में बतानेवाले) लोग लम्बी-लम्बी दुआएँ पढ़वाते हैं, ये दुआएँ नबी (सल्ल०) से साबित नहीं हैं। आप कोई भी मसनून दुआ या ज़िक्र जो याद हो और जिसमें आपका दिल लगे उसे बार-बार पढ़ सकते हैं। क़ुरआन की तिलावत कर सकते हैं, कलिमा पढ़ सकते हैं, तौबा व इसतिग़फ़ार कर सकते हैं। अपनी ज़बान (भाषा) में अल्लाह से दुआ कर सकते हैं। वैसे तो बिना किसी ज़िक्र या

1. काबा का दरवाज़ा हजरे-असवद के दाहिनी तरफ़ है और हजरे-असवद दरवाज़े के बाईं तरफ़ है।

दुआ से भी तवाफ़ हो जाता है। अगर आप याद कर सकें तो यह छोटी-सी दुआ[1] बेहतर रहेगी जो क़ुरआन की आयत भी है—

رَبَّنَا اٰتِنَا فِی الدُّنْیَا حَسَنَۃً وَّ فِی الْاٰخِرَۃِ حَسَنَۃً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ

रब्बना आतिना फ़िद्दुनया ह-स-नतौं व फ़िल आख़ि-रति ह-स-नतौं व क़िना अज़ाबन्नार।

"ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे और हमें जहन्नम के अज़ाब से बचा।"

तवाफ़ कर चुकने के बाद 'मकामे-इबराहीम' की तरफ़ आइए। अगर बिना कशमकश के 'मकामे-इबराहीम' के पीछे जगह मिल जाए तो मकामे-इबराहीम के पीछे वरना आसपास जहाँ भी जगह मिल जाए, दो रकअत नमाज़ पढ़ लीजिए। इन रकअतों में सूरा-109 काफ़िरून और सूरा-112 इख़लास पढ़ें तो बेहतर है। यह दो रकअत नमाज़ हर तवाफ़ के बाद पढ़नी चाहिए और अगर मकरूह वक़्त हो तो उस वक़्त के गुज़रने के बाद पढ़िए।

नोटः इस तवाफ़ के शुरू होने पर तलबिया कहना बन्द कर दीजिए, अब हज का एहराम बाँधने पर तलबिया शुरू होगा।

सफ़ा और मरवा के बीच सई

अब फिर हजरे-असवद के पास आइए और उसे चूमिए या ऊपर बताए गए तरीक़ों में से जो तरीक़ा भी बिना कशमकश के मुमकिन हो अपनाइए। फिर मस्जिदे-हराम के 'बाबुस्सफ़ा' नामक दरवाज़े से बाहर निकलिए और सफ़ा पहाड़ी की तरफ़ जाइए।[2] सफ़ा के पास पहुँचे तो बेहतर है कि यह कहें— اِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَۃَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰہِ، اَبْدَاُ بِمَا بَدَاَ اللّٰہُ بِہٖ.

इन्नस्सफ़ा वल-मर-व-त मिन शआइरिल्लाह, अब-दउ बिमा ब-द-अल्लाहु बिही

1. कुछ रिवायतों में है कि यह दुआ रुक्ने-यमानी और हजरे-असवद के बीच पढ़नी चाहिए।
2. सफ़ा और मरवा दो पहाड़ियाँ थीं, लेकिन अब उनका सिर्फ़ निशान बाक़ी है, ये पहले मस्जिदे-हराम (काबा) के बाहर थीं, अब इन्हें मस्जिद के अन्दर ही शामिल कर लिया गया है।

"सफ़ा और मरवा अल्लाह (के दीन) की निशानियाँ हैं, मैं उसी (सफ़ा) से शुरू करता हूँ जिससे अल्लाह ने शुरू किया।"

फिर सफ़ा की सीढ़ियों पर इतना चढ़िए कि आपको काबा नज़र आने लगे। अब काबा की तरफ़ मुँह करके खड़े हो जाइए और दोनों हाथ दुआ के लिए कन्धों तक उठाइए और कहिए–

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ، لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ، لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ، اَنْجَزَ وَعْدَهٗ وَنَصَرَ عَبْدَهٗ وَهَزَمَ الْاَحْزَابَ وَحْدَهٗ

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू ला शरी-क लहू, लहुल-मुल्कु, व लहुल-हम्दु व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर, ला इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू अन-ज-ज़ वअ्-दहू व न-स-र अब-दहू व ह-ज़-मल-अहज़ा-ब वह-दहू।

"अल्लाह ही बड़ा है! अल्लाह ही बड़ा है! अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, अकेला वही माबूद है, उसका कोई शरीक नहीं, उसी के लिए बादशाहत है और उसी के लिए तारीफ़ और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, अकेला वही माबूद है, उसने अपना वादा पूरा किया। अपने बन्दे की मदद की और दल-की-दल फ़ौजों को अकेले शिकस्त दी।"

फिर ख़ूब गिड़गिड़ाकर दुआ कीजिए, अपनी और दूसरों की हिदायत, मग़फ़िरत, दीन पर जमे रहने और दीने-हक़ की सरबुलन्दी के लिए। इसके अलावा तमाम जाइज़ दुआएँ और जो आपके अपने हाल और ज़रूरत के मुताबिक़ दुआएँ हों, सब माँग सकते हैं। इस दुआ के बाद फिर ऊपर लिखा हुआ ज़िक्र कीजिए। यह ज़िक्र और इसके बाद दुआ तीन बार कीजिए। फिर नीचे उतरकर मरवा की तरफ़ चल दीजिए, ऐसा समझिए कि आप अल्लाह की राह पर लपक रहे हैं, उसकी इताअत में सरगर्म हैं, उसके दीन को ग़ालिब

करने के लिए दौड़-धूप में लगे हैं। अगर ख़ामोश चलें तब भी सई हो जाएगी। लेकिन अच्छा यही है कि आप अल्लाह के ज़िक्र में लगे रहें। (इसके लिए कोई ख़ास ज़िक्र नहीं है, जो ज़िक्र चाहें करें।) रास्ते में एक मक़ाम मिलेगा, जहाँ पर रास्ते के दोनों तरफ़ हरे रंग के पत्थर के दो निशान मिलेंगे, यहाँ पहुँचें तो ज़रा लपककर चलिए। कुछ आगे फिर हरे रंग के पत्थर के दो निशान मिलेंगे, बस यहाँ तक लपककर चलिए। सफ़ा से मरवा और मरवा से सफ़ा जाते इन दोनों निशानों के बीच ज़रा लपककर चलिए, बाक़ी हिस्से में मामूली रफ़तार से चलिए। मरवा पहुँचने के बाद उसकी एक दो सीढ़ियों पर चढ़िए। यहाँ भी क़िबले की तरफ़ मुँह करके खड़े हो जाइए और हाथ उठाकर उसी ज़िक्र और दुआ में लग जाइए जिस तरह सफ़ा पर किया था।[1] यह सई का एक चक्कर हुआ। इसके बाद मरवा से उतरकर सफ़ा की तरफ़ चलें और बेहतर यही है कि अल्लाह के ज़िक्र में लगे रहें। सफ़ा पर पहुँचने के बाद जैसे पहले ज़िक्र और दुआ में लगे रहे थे वैसे ही फिर लग जाइए, यह दूसरा चक्कर हुआ। इसी तरह सात चक्कर कीजिए।[2] इसके बाद आप सिर के बाल मुंडवा दीजिए या कतरवा दीजिए। अब आप उमरे से फ़ारिग़ हो गए और उमरे का एहराम भी ख़त्म हो गया। अब आपके लिए वे तमाम चीज़ें हलाल हो गईं जो एहराम की हालत में मना थीं और जब तक आप हज का एहराम न बाँधेंगे, ये सब चीज़ें जाइज़ ही रहेंगी।

हज से पहले के काम

हज का एहराम आप आठवीं ज़िल-हिज्जा को बाँधेंगे। इससे पहले आप मक्का में बिना एहराम के रहेंगे। इस वक़्त की क़द्र कीजिए, बेकार की बातों से बचिए, बैतुल्लाह का ज़्यादा-से-ज़्यादा तवाफ़ कीजिए। इन तवाफ़ों में शुरू के तीन चक्करों में न तो रमल (दौड़कर चलना) होगा न इज़तिबा (चादर को दाहिनी तरफ़ से बगल से निकालकर बाएँ कन्धें पर डाल लेना और दायाँ

---

1. मुअल्लिम (हज वग़ैरा की तालीम देनेवाले) लोग सफ़ा और मरवा पर ज़िक्र व दुआ नहीं कराते। सफ़ा और मरवा पर ज़िक्र व दुआ करना मसनून है।
2. सफ़ा-मरवा के बीच दौड़ना जैसा कि मुअल्लिम कराते हैं न ज़रूरी है न सही। हरे रंग के निशानों के बीच भी सिर्फ़ लपककर जाना चाहिए।

कन्धा खुला छोड़ना) और न तवाफ़ के बाद सफ़ा और मरवा के बीच 'सई' होगी। अपना ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त मस्जिदे-हराम (काबा) में गुज़ारिए ज़्यादा-से-ज़्यादा तवाफ़, नफ़्ल नमाज़, क़ुरआन की तिलावत, ज़िक्र, दुआ और तौबा व इसतिग़फ़ार कीजिए, लेकिन सब कुछ सोच-समझकर और ख़ुलूस व ख़ुशू के साथ कीजिए। इन कामों के अलावा लोगों की इस्लाह और दीन की दावत व तबलीग़ के मुनासिब मौक़ों को भी हाथ से न जाने दीजिए। साथियों की ख़िदमत और बीमारों की ख़ैरियत पूछना बहुत ज़्यादा अज्र का काम है।

हज का एहराम

हालाँकि आप हज का एहराम पहले भी बाँध सकते हैं, लेकिन सुन्नत यही है कि आठवीं ज़िल-हिज्जा को सुबह-सवेरे मस्जिदे-हराम (काबा) से एहराम बाँधें। नहा सकते हों तो नहा लें वरना वुज़ू कीजिए और मस्जिदे-हराम ही में दो रकअत नमाज़ नफ़्ल पढ़िए, सलाम फेरते ही सिर खोलकर दिल में अल्लाह के लिए हज की नीयत करते हुए ख़ुलूस व ख़ुशू और सूझ-बूझ व सोच-समझकर तलबिया कहें—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ . لَبَّيْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ ،اِنَّ الْحَمْدَ

وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क लब्बैक, इन्नल-हम-द वन्निअ्-म-त ल-क वल-मुल-क ला शरी-क लक।

अब आप फिर एहराम की हालत में हैं और आपपर एहराम की सारी पाबन्दियाँ लागू हो गई हैं। आप चलते-फिरते, उठते-बैठते, लोगों से मिलते-जुलते, ज़ौक़-शौक़, समझ-बूझ, इख़लास व तवज्जोह के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा तलबिया पुकारिए।[1]

---

1. हज के कामों में एक बार सफ़ा-मरवा की सई करना वाजिब है। यह सई मिना को रवानगी से पहले 8 ज़िल-हिज्जा को भी कर सकते हैं और 10 ज़िल-हिज्जा को तवाफ़े-ज़ियारत के बाद भी। अगर 8 ज़िल-हिज्जा को सई करें तो पहले काबा का तवाफ़ करें, क्योंकि तवाफ़ के बिना सई नहीं होगी।

मिना में ठहरना

एहराम बाँधने के बाद उसी दिन जल्द-से-जल्द मिना के लिए रवाना हो जाइए। सुबह-सवेरे ठंडे चल दें तो बेहतर है। मक्का से मिना की दूरी सिर्फ़ चार-पाँच किलोमीटर है, रास्ते में तलबिया पुकारते हुए जाइए। मिना पहुँचकर आपको कोई ख़ास काम नहीं करना है। बस आठवीं ज़िल-हिज्जा के दिन और उसके बाद आनेवाली पूरी रात यहाँ ठहरना है और ज़ुहर से फ़ज्र तक की नमाज़ें यहीं पढ़नी हैं। नमाज़ें पूरे एहतिमाम और ख़ुशू व ख़ुज़ू के साथ पढ़नी हैं। समझ-समझकर क़ुरआन की तिलावत कीजिए, अल्लाह का ज़िक्र और उससे दुआ कीजिए, ख़ूब तलबिया पढ़िए और लोगों की इस्लाह और दावत व तबलीग़ का काम भी अच्छे और हकीमाना तरीक़े से कीजिए।

अरफ़ात में ठहरना

नवीं ज़िल-हिज्जा को सूरज निकलने के बाद अरफ़ात के लिए चल दीजिए, मिना से अरफ़ात छह मील है। अरफ़ात में नवीं ज़िल-हिज्जा के ज़वाल (सूरज ढलने) से लेकर दसवीं ज़िल-हिज्जा की सुबह सादिक़ के तुलू होने (पौ फटने) तक किसी वक़्त भी ठहरना हज का रुकने-आज़म (सबसे बड़ा रुक्न) है, जिसके बिना हज नहीं होता। रास्ते में पूरे वक़ार और ख़ुशू के साथ अल्लाह का ज़िक्र करते और तलबिया पढ़ते हुए जाइए। ज़वाल से पहले अरफ़ात में दाख़िल न हों तो बेहतर है। उस वक़्त तक मस्जिदे-नमरा (जो अरफ़ात से मिली हुई है) के क़रीब ठहरें। ज़वाल का वक़्त क़रीब आने पर बेहतर है कि ग़ुस्ल कर लें, मगर मैल न छुड़ाएँ। खाने-पीने से भी उसी वक़्त फ़ारिग़ हो जाएँ। ज़वाल होते ही मस्जिदे-नमरा में ज़ुहर और अस्र की नमाज़ें एक साथ (यानी पहले ज़ुहर और फिर अस्र की) ज़ुहर के वक़्त इमाम के पीछे पढ़िए। नमाज़ से पहले ख़ुतबा सुनिए, अगर आपको जमाअत न मिले तो ज़ुहर की नमाज़ ज़ुहर के वक़्त में और अस्र की नमाज़ अस्र के वक़्त में पढ़िए। नमाज़ पढ़ने के फ़ौरन बाद अरफ़ात के मैदान में दाख़िल हो जाइए। उरना[1] के अलावा जहाँ चाहें ठहरिए, बस लोगों से अलग और रास्ते में न ठहरिए।

---

1. उरना, मस्जिदे-अरफ़ात से पश्चिम की तरफ़ से सटी हुई एक वादी है।

अरफ़ात का यह क़ियाम पूरे हज का निचोड़ है। यहाँ एक लम्हा भी ग़फ़लत में बरबाद न कीजिए। तलबिया, ज़िक्र, दुआ, क़ुरआन की तिलावत और तौबा व इसतिग़फ़ार में अपना सारा वक़्त गुज़ारिए।[1] अरफ़ात में आप अगरचे लेट-बैठ भी सकते हैं, मगर बेहतर यही है कि आप जहाँ तक हो सके खड़े रहें और हाथ उठाकर गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर और रो-रोकर दुआएँ करते रहें। अल्लाह से ख़ूब रो-रोकर दुआएँ करना, तौबा-इसतिग़फ़ार करना अरफ़ात में करने के असली काम हैं। आप ख़ुदा से अपनी हिदायत, मग़फ़िरत, दीने-हक़ की ठीक-ठीक पैरवी, उसकी सरबुलन्दी के लिए जिद्दो-जुहद और ख़ुदा की राह में सब्र व इसतिक़ामत के लिए ख़ूब गिड़गिड़ाकर दुआ कीजिए कि ख़ुदा की रिज़ा और आख़िरत की कामयाबी आपकी तमाम सरगर्मियों का मरकज़ और आपका और तमाम मुसलमानों की ज़िन्दगी का मक़सद बन जाए और मुस्लिम उम्मत फिर से दीन की शहादत और इक़ामत के मंसब और ज़िम्मेदारी को सम्भाल ले। दुआ के अलावा अरफ़ात के मैदान में हश्र के मैदान का और क़ियामत के दिन जमा होने का तसव्वुर करके अपनी पूरी ज़िन्दगी का कड़ा और बेलाग जायज़ा लीजिए। एक मोमिन की ज़िन्दगी कैसी होनी चाहिए और ईमान व इस्लाम के तक़ाज़े और माँगें क्या-क्या हैं? इस किताब में इसका थोड़ा-सा ज़िक्र आ चुका है, इन सबको सामने रखकर हर-हर पहलू से अपनी ज़िन्दगी के एक-एक पहलू का सख़्त हिसाब लीजिए, फिर आपको जो-जो कोताहियाँ नज़र आएँ, उनपर संजीदगी के साथ शरमिन्दा हो जाइए, आजिज़ी और गिड़गिड़ाकर उनसे तौबा कीजिए और मज़बूत इरादे और पूरी सूझ-बूझ के साथ अह्द (प्रतिज्ञा) कीजिए कि आप आइन्दा ख़ुदा के दीन की पैरवी और उसकी दावत और इक़ामत के सिलसिले में अपनी हैसियत और ताक़त के मुताबिक़ कोई कोताही न करेंगे। यह है अरफ़ात का क़ियाम, और यह दुआ, यह तौबा और यह अह्द ही इस क़ियाम (ठहरने) का हासिल हैं।[2]

---

1. मुअल्लिम के इंतिज़ार में वक़्त बरबाद न कीजिए, जो कुछ कीजिए ख़ुद ही कीजिए।
2. अरफ़ात में एक पहाड़ी जबले-रहमत है, वहाँ दुआ करने का मौक़ा मिले तो ज़रूर करना चाहिए।

मुज़्दलिफ़ा में ठहरना

सूरज डूबने पर मग़रिब की नमाज़ पढ़े बिना तलबिया पुकारते और अल्लाह का ज़िक्र करते हुए मुज़्दलिफ़ा को चल दीजिए। मुज़्दलिफ़ा में इशा के वक़्त में पहले मग़रिब की और उसके फ़ौरन बाद सुन्नतें पढ़े बिना इशा की नमाज़ पढ़िए। मुज़्दलिफ़ा में जहाँ चाहें ठहर सकते हैं, बस रास्ते में, और लोगों से अलग होकर, और मुहस्सिर की वादी में न ठहरिए। जबले-क़ज़ह के क़रीब ठहरें तो बेहतर है, यहाँ भी आप ज़िक्र व दुआ और तौबा व इसतिग़फ़ार वग़ैरा में लगे रहें। अलबत्ता थोड़ा-बहुत सो लीजिए क्योंकि यह सुन्नत है। सुबह सादिक़ होने (पौ फटने) के फ़ौरन बाद नमाज़ पढ़िए, फिर सुबह की रौशनी ख़ूब फैलने तक अल्लाह की हम्द व सना, तकबीर, ला-इला-ह इल्लल्लाह कहने और दुआ व इसतिग़फ़ार में मशग़ूल रहिए।

रमिये-जम-र-ए-उक़बा

सूरज निकलने से थोड़ा पहले सुकून और वक़ार के साथ तलबिया पुकारते और अल्लाह का ज़िक्र करते हुए मिना को चलिए। रमिये-जमरात के लिए मुज़्दलिफ़ा से चने के दाने के बराबर कंकरियाँ ले लीजिए। बतने-मुहस्सिर के पास पहुँचे तो तेज़ी के साथ वहाँ से निकल जाएँ कि यहीं हाथीवाले (असहाबे-फ़ील) अल्लाह के अज़ाब से हलाक हुए थे। मिना पहुँचकर सीधे जम-र-ए-उक़बा (मक्का की जानिब आख़िरी सुतून) पर पहुँचिए। इस सुतून से पाँच-छह हाथ की दूरी पर नीचे की जानिब इस तरह खड़े हो जाइए कि मिना आपके दाहिनी तरफ़ हो और काबा बाईं तरफ़। हर बार एक कंकरी दाहिने हाथ के अंगूठे और कलिमे की उँगली से पकड़कर सुतून के नीचे के हिस्से पर 'अल्लाहु अकबर' कहकर मारिए। इसी तरह एक के बाद एक सात कंकरियाँ मारिए। आज आपको बस इसी जमरे की रमी करनी है। याद रहे कि इस जमरे पर पहली कंकरी मारते ही तलबिया कहना बन्द हो जाएगा, अब आप तलबिया न पुकारेंगे। (जमरा एक तरफ़ से जाएँ और दूसरी तरफ़ से आएँ।)

क़ुरबानी

रमी के बाद क़ुरबानगाह जाकर क़ुरबानी कीजिए और हो सके तो अपने हाथ से कीजिए। क़ुरबानी से पहले दुआ पढ़िए। इस दुआ में 'अन' के बाद अपना और जिन-जिन की तरफ़ से क़ुरबानी हो, उनका नाम लीजिए।

اِنِّیْ وَجَّهْتُ وَجْهِیَ لِلَّذِیْ فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضَ، عَلٰی مِلَّةِ اِبْرَاهِیْمَ حَنِیْفًا وَّ مَا اَنَا مِنَ الْمُشْرِکِیْنَ ، اِنَّ صَلٰوتِیْ وَ نُسُکِیْ وَ مَحْیَایَ وَ مَمَاتِیْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ، لَا شَرِیْکَ لَهٗ وَ بِذٰلِکَ اُمِرْتُ وَ اَنَا مِنَ الْمُسْلِمِیْنَ. اَللّٰهُمَّ لَکَ وَ مِنْکَ عَنْ....بِسْمِ اللّٰهِ وَ اللّٰهُ اَکْبَرُ.

इन्नी वज्जहतु वजहि-य लिल्लज़ी फ़-तरस्समावाति वल-अर-ज़ अला मिल्लति इबराही-म हनीफ़ौं व मा अ-न मिनल-मुशरिकीन, इन-न सलाती, व नुसुकी व मह्या-य व ममाती लिल्लाहि रब्बिल आ-लमीन, ला शरी-क लहू व बिज़ालि-क उमिरतु व अ-न मिनल-मुस्लिमीन। अल्लाहुम-म ल-क व मिन्-क अन......बिसमिल्लाहि वल्लाहु अकबर।

हल्क़ और क़स्र

क़ुरबानी के बाद सिर के बाल मुँडा दीजिए (यह बेहतर है) या कतरवा दीजिए। औरतें अपनी चोटी का सिरा पकड़कर कुछ बाल तरशवा दें और बस! अब आपका एहराम ख़त्म हो गया और बीवी से हमबिस्तरी (सहवास) के अलावा वे तमाम चीज़ें जो एहराम की वजह से हराम थीं, अब हलाल हो गईं।

तवाफ़े-ज़ियारत

हालाँकि तवाफ़े-ज़ियारत बारहवीं ज़िल-हिज्जा की शाम तक हो सकता है, मगर अफ़ज़ल यही है कि दसवीं ज़िल-हिज्जा को हल्क़ या क़स्र के बाद कर लें। ख़ूब नहा-धोकर और सिले कपड़े पहनकर मक्का के लिए चल दीजिए और जिस तरह पहले लिखा जा चुका है, तवाफ़ कीजिए। दो रकअत नमाज़े-तवाफ़ पढ़ने के बाद ज़मज़म पर जाकर बिसमिल्लाह पढ़कर, पानी पीजिए। अगर आप ने 8 ज़िल-हिज्जा को सई नहीं की है तो अब सफ़ा और

मरवा के बीच सई कीजिए— अब आपपर से एहराम की तमाम पाबन्दियाँ उठ गईं। औरत अगर हाइज़ा (महीने से) हो तो पाक होने के बाद यह तवाफ़ और सई करे। (एहराम, अरफ़ात का क़ियाम और तवाफ़े-ज़ियारत हज के अरकान हैं, इनके बिना हज नहीं होता।)

मिना में क़ियाम और रमिये-जमरात

सई के बाद उसी दिन ज़ुह्र की नमाज़ पढ़कर मिना के लिए रवाना हो जाइए। दसवीं ज़िल-हिज्जा की रात से लेकर कम-से-कम बारह ज़िल-हिज्जा तक आपको मिना में रहना और तीनों जमरों की रमी करना है। अच्छा तो यह है कि आप तेरह को भी मिना में रमी करके वापस जाएँ। रमिये-जमरात का वक़्त ज़वाल के बाद से सूरज डूबने तक है। ग्यारहवीं ज़िल-हिज्जा को नमाज़े-ज़ुह्र के बाद पहले जमरा-ए-ऊला (जो मस्जिदे-ख़ीफ़ के पास है) की रमी कीजिए। क़ायदे के मुताबिक़ सुतून की जड़ में सात कंकरियाँ मारिए, फिर देर तक खड़े होकर ख़ुदा से दुआ और उसे याद कीजिए। इसके बाद जम-रा-ए-वुस्ता (बीच का जमरा) की रमी कीजिए। यहाँ भी रमी के बाद क़िबले की तरफ़ मुँह करके ज़िक्र और दुआ कीजिए। इसके बाद जम-रा-ए-उक़बा की रमी कीजिए, मगर इस जमरे की रमी के बाद ठहरकर दुआ नहीं होती। रमी के बाद अपने क़ियाम की जगह आ जाइए, ख़ास तौर से रात को मिना ही में रहिए। बारहवीं को भी इसी तरह रमी कीजिए और अगर तेरहवीं को रहें तो तेरहवीं को भी रमी कीजिए। मिना में ठहरने के दौरान अपने वक़्त को बेकार बरबाद न करें। नमाज़ें पूरी तवज्जोह और ख़ुशू व ख़ुज़ू के साथ मस्जिदे-ख़ीफ़ में जमाअत के साथ पढ़ें। ज़िक्र, दुआ और तौबा व इसतिग़फ़ार में ज़्यादा-से-ज़्यादा लगे रहें। दावत व तबलीग़ के मौक़े यहाँ ज़्यादा हैं, उन्हें हाथ से न जाने दें।

मक्का में क़ियाम

रमी के बाद बारहवीं या तेरहवीं ज़िल-हिज्जा को मक्का आ जाइए और जब तक आपकी रवानगी की बारी न आए, यहाँ के क़ियाम को बड़ा क़ीमती जानकर इससे ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा उठाइए। पता नहीं, फिर कभी यहाँ आना नसीब हो या न हो, इसलिए काबा का ख़ूब तवाफ़ कीजिए।

मस्जिदे-हराम में ज़्यादा-से-ज़्यादा नफ़्ल नमाज़ें पढ़िए। ज़िक्र, दुआ, क़ुरआन की तिलावत और तौबा-इसतिग़फ़ार में ज़्यादा-से-ज़्यादा लगे रहिए। मुल्तज़म (हजरे-असवद और काबा के दरवाज़े के बीच की काबा की दीवार) से लिपट-लिपटकर दुआएँ कीजिए और जब भी मौक़ा मिले, लोगों की इस्लाह और दीन की दावत में कोई कमी न छोड़िए।

तवाफ़े-विदा

रवाना होने से पहले यह तवाफ़ किसी भी वक़्त किया जा सकता है। लेकिन अच्छा यही है कि जिस दिन और जिस वक़्त आप रवाना हो रहे हों, उसी दिन और उसी वक़्त आप यह अलविदाई तवाफ़ करें और ज़ौक़-शौक़, ख़ुशू-ख़ुज़ू और गिड़गिड़ाते हुए तवाफ़ करके काबा से विदा हों।

कुछ दूसरे मसले

(1) अच्छा यह है कि आप कुछ साथियों के साथ हज का सफ़र करें और ये सब लोग अपने में से मुनासिब आदमी को अपना अमीर बना लें जिसकी सब इताअत करें और जो सबकी सलाह और मशूवरे से काम करे। सफ़र के अलावा भी इस्लाम में इजतिमाइयत की बड़ी अहमियत है। इसलिए हज के बाद जब आप घर आएँ तो इसकी फ़िक्र करें कि आपकी ज़िन्दगी इजतिमाइयत के साथ बसर हो और आप किसी इस्लामी नज़्म (व्यवस्था) के पाबन्द होकर सच्चे दीन की पैरवी करें और दीन की दावत व इक़ामत के काम में लग जाएँ। अगर हज से वापसी के फ़ौरन बाद आपने अपने अह्द (प्रतिज्ञा) को पूरो करने की कोशिश न की तो डर है कि आपके जज़बात ठंडे पड़ जाएँ और आप उस अह्द को पूरा न कर सकें, जो आपने अल्लाह से किया है।

(2) हज हक़ीक़त में मुसलमानों के ख़लीफ़ा (शासक) या उसके मुक़र्रर किए हुए किसी नायब के एहतिमाम में होना चाहिए। हज के कुछ मनासिक (प्रथाएँ) तो बिलकुल उन्हीं से मुताल्लिक़ हैं। यह इस उम्मत की बदकिस्मती है कि इस नेमत से महरूम है और न सिर्फ़ हज बल्कि पूरे दीन के बारे में भारी नुक़सान उठा रही है। उम्मत की यह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि वह उस निज़ाम को फिर से क़ायम करने की जानतोड़ कोशिश करे। इस वक़्त

तो हुकूमते-हिजाज़ के एहतिमाम में हज होता है।

(3) तवाफ़ के लिए जनाबत और हैज़ (महीना) वग़ैरा से पाक और बावुज़ू होना ज़रूरी है।

(4) काबा के अन्दर दाख़िल होना हज का कोई हिस्सा नहीं है। ज़्यादा-से-ज़्यादा इसे मुस्तहब कहा जा सकता है। इसके लिए लोगों से कश-मकश करना हरगिज़ जाइज़ नहीं। अगर आप अन्दर दाख़िल हो जाएँ तो दो रकअत नफ़्ल नमाज़ अन्दर किसी भी तरफ़ मुँह करके पढ़ लें।

(5) हरम की हदों में किसी जानवर को डाँटना या शिकार करना और घास वग़ैरा काटना मना है। हाँ! मूज़ी (तकलीफ़ देनेवाले) जानवरों को मारना जाइज़ है।

(6) हज में तीन चीज़ें फ़र्ज़ हैं— (1) हज की नीयत करके एहराम बाँधना, (2) अरफ़ात में 9 ज़िल-हिज्जा को ठहरना, (3) तवाफ़े-ज़ियारत जो 10 ज़िल-हिज्जा से 12 ज़िल-हिज्जा तक किसी भी दिन हो सकता है। इनमें से जो कोई चीज़ छूट जाए तो हज नहीं होगा।

मदीना की हाज़िरी

मदीना की हाज़िरी हज का हिस्सा नहीं है। उलमा ने यहाँ तक लिखा है कि अगर किसी के पास सिर्फ़ इतनी रक़म हो कि वह मक्का जाकर वापस आ सकता है, मगर मदीना नहीं जा सकता तो उसपर हज फ़र्ज़ हो गया और उसे हज की अदाएगी की फ़िक्र करनी चाहिए।

लेकिन ऐसा कौन-सा मुसलमान होगा जो दूर-दराज़ देशों और इलाक़ों से सफ़र करके मक्का आए और उसे मदीना आने का शौक़ न हो। हदीसों में मदीना की बड़ी फ़ज़ीलत बताई गई है। यहीं नबी (सल्ल॰) की मस्जिद (मस्जिदे-नबवी) है जो नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) की तामीर की हुई है और यह मस्जिद नबी (सल्ल॰) और ख़िलाफ़ते-राशिदा के दौर में दावते-दीन, इस्लाह और तरबियत और इक़ामते-दीन का मरकज़ रही है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"सफ़र न किया जाए, मगर तीन मस्जिदों की तरफ़ (1)

मस्जिदे-हराम, (2) मस्जिदे-अक़्सा और (3) मेरी यह मस्जिद।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

दूसरी मस्जिदों के मुक़ाबले में—सिवाय मस्जिद के—मस्जिदे-नबवी में नमाज़ पढ़ने का अज्र हज़ार गुना ज़्यादा है।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मस्जिदे-नबवी में नबी (सल्ल॰) के घर '(रौज़ा-ए-मुबारक)' और मिम्बर (मंच) के बीच एक जगह रियाज़ुल-जन्नह (जन्नत का बग़ीचा) है (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)। इसी मस्जिद से सटा हुआ आप (सल्ल॰) का 'मज़ारे-मुबारक' है।

मदीना हाज़िर हों तो ज़्यादा वक़्त मस्जिदे-नबवी में गुज़ारें। बेहतर तो यह है कि चालीस वक़्त (आठ दिन) की फ़र्ज़ नमाज़ें लगातार मस्जिदे-नबवी में अदा करें। फ़र्ज़ नमाज़ों के अलावा तहज्जुद की नमाज़ और दूसरी नफ़्ल नमाज़ें भी पढ़ें। लेकिन जो नमाज़ भी पढ़ें, शुऊर, ख़ुशू और इत्मीनान के साथ पढ़ें। रियाज़ुल-जन्नह में मौक़ा मिलने पर दो रकअत नफ़्ल ज़रूर पढ़ें, मगर दूसरे लोगों के लिए जगह जल्द ख़ाली कर दें। मस्जिदे-नबवी में नमाज़ों के अलावा तिलावत, ज़िक्र, दुआ, इसतिग़फ़ार और दुरूद का एहतिमाम करें।

रौज़ा-ए-नबवी पर हर नमाज़ के बाद हाज़िरी ज़रूरी नहीं है। आप दिन में एक बार हाज़िर हों या एक से ज़्यादा बार, जब भी हाज़िर हों अदब और एहतिराम के साथ धीरे-धीरे दुरूद और सलाम अर्ज़ करें। मस्जिदे-नबवी में ज़ोर-ज़ोर से बात करना मना है। आप (सल्ल॰) के बराबर ही आप (सल्ल॰) के दोनों साथियों, हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और हज़रत उमर (रज़ि॰) के मज़ारें (क़ब्रें) हैं, उनपर भी दुरूद-व-सलाम भेजें, फिर इधर से रुख़ मोड़कर क़िबले की तरफ़ मुँह करके ख़ुदा से अपनी दुनिया और आख़िरत की कामयाबी, उन पाक और बा-बरकत बुज़ुर्गों की सच्ची पैरवी और अल्लाह के कलिमे को ऊँचा करने के लिए दुआ करें। नबी (सल्ल॰) के रौज़े पर सजदा करने, आप (सल्ल॰) से दुआ करने या जाली चूमने की कोशिश न करें, क्योंकि ये सब काम शरीअत के ख़िलाफ़ हैं। जन्नतुल-बक़ी (मदीना का

क़ब्रिस्तान जिसमें बेशुमार सहाबा (रज़ि॰) और उम्मत के सालेह लोग दफ़न हैं) और उहुद के शहीदों के मज़ारों पर जाएँ तो उनके लिए दुआ करें और शरीअत के ख़िलाफ़ कामों से बचें। (मस्जिदे-क़ुबा, जन्नतुल-बक़ी और उहुद के शहीदों के मज़ारों के लिए कोई ख़ास दुआएँ नहीं है।)

मदीना की हाज़िरी के दौरान आप अल्लाह से अह्द करें कि आप अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और सहाबा (रज़ि॰) की पैरवी करते हुए दीने-हक़ की पैरवी और दावत व इक़ामत का हक़ अदा करेंगे और अल्लाह की राह में हर तरह की क़ुरबानियाँ देकर उसे राज़ी और ख़ुश करने की कोशिश करेंगे। हज और मदीना की हाज़िरी के बाद घर वापस आकर आपकी ज़िन्दगी इस्लाम के साँचे में ढल गई और आप इस्लाम की दावत-देनेवाले और अलमबरदार बन गए तो आपका हज 'हज्जे-मबरूर' और आपकी ज़ियारत क़बूल हो गई। इन-शा अल्लाह!

ज़मज़म का पानी

काबा से पूरब की तरफ़ एक कुआँ है जो ज़मज़म के नाम से मशहूर है। यह कुआँ और इसका पानी बहुत मुबारक और बरकतवाला है। अल्लाह तआला ने हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) की प्यास बुझाने के लिए अपने ख़ास फ़रिश्ते से उस सूखी ज़मीन पर इस कुएँ के ज़रिए से पानी का इंतिज़ाम किया। जब हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अपने बेटे हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) और बीवी हज़रत हाजिरा (अलैहि॰) को अल्लाह के हुक्म से काबा के पास बसाया, तो उस वक़्त वहाँ आस पास कहीं पानी नहीं था। उस वक़्त अल्लाह तआला ने अपनी मेहरबानी से वहाँ पानी का इंतिज़ाम किया।

हदीसों में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ज़मज़म के पानी की बड़ी फ़ज़ीलत बयान की है। इसलिए हाजी तवाफ़ करने के बाद ज़मज़म का पानी पीते हैं और अपने लिए उसमें से लेते हैं।

हदीस में है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने तवाफ़े-ज़ियारत के बाद दो रकअत नमाज़ पढ़ी और फिर ज़मज़म पर आकर ख़ूब पानी पिया। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ज़मज़म का पानी हर मक़सद के लिए फ़ायदेमन्द है—अगर तुम इसे बीमारियों से शिफ़ा के लिए पियोगे तो तुम्हें शिफ़ा मिलेगी,

अगर तुम इसे दिल के इतमीनान और सुकून के लिए पियोगे तो तुम्हें इतमीनान और सुकून मिलेगा, अगर इसे प्यास बुझाने के लिए पियोगे तो अल्लाह तआला तुम्हारी प्यास बुझा देगा। इस कुएँ को हज़रत जिबरील (अलैहि॰) ने एक चट्टान पर चोट मारकर बनाया और यह हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) के पानी पीने की जगह है।" (हदीस : दारेक़ुतनी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ज़मीन पर मौजूद तमाम पानी से बेहतर 'ज़मज़म' का पानी है, यह भूखे के लिए ग़िज़ा (भोजन) और बीमार के लिए शिफ़ा है।"

(हदीस : इब्ने-हिब्बान)

ज़मज़म के पानी को खड़े होकर पीना चाहिए। इसे 'बिसमिल्लाह' पढ़कर पीना चाहिए और पीने के बाद यह दुआ पढ़नी चाहिए—

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْٓ اَسْئَلُكَ عِلْمًا نَّافِعًا وَّ رِزْقًا وَّاسِعًا وَّ شِفَاءً

مِّنْ كُلِّ دَاءٍ

अल्लाहुम-म इन्नी अस्अलु-क इल्मन नाफ़िऔं व रिजकौं वासिऔं व शिफ़ाअम् मिन् कुल्लि दाइन्।

"ऐ अल्लाह! मैं तुझसे माँगता हूँ नफ़ा देनेवाला इल्म और रोज़ी की कुशादगी और हर मर्ज़ की शिफ़ा!" (हदीस : नैलुल-औतार)

•••